ईरान

ईरान देश का भौगोलिक एवं सामाजिक परिचय

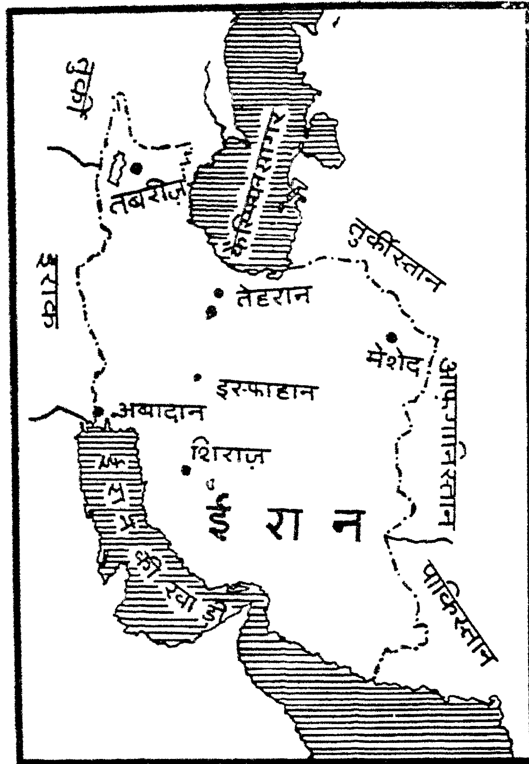
सत्यपाल विद्यालंकार





राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

क्रम

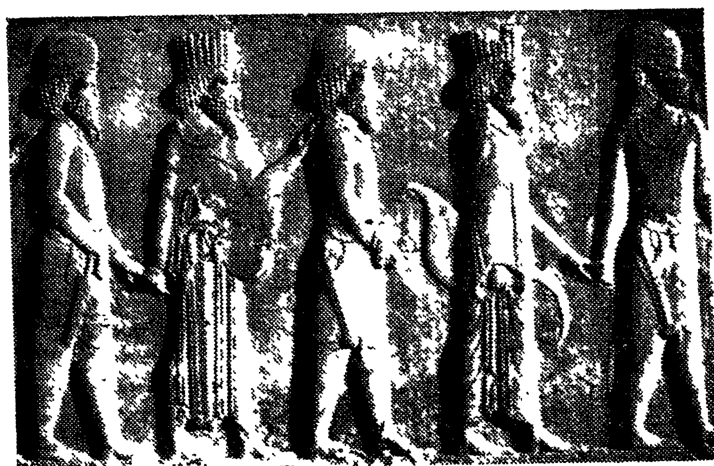

तुर्की
तबरीज़
कैस्पियन सागर
तुर्किस्तान
इराक
तेहरान
मैशेद
इस्फाहान
अबादान
शिराज़
अफगानिस्तान
ईरान
पाकिस्तान

ईरान

१. प्रारम्भिक परिचय

ईरान को आज कल पर्शिया या फ़ारस भी कहते हैं। ईरान इसका प्राचीन नाम है, क्योंकि इसके मूल निवासी आर्य थे।

वास्तव में, ईरान के एक दक्षिणी प्रान्त का नाम 'पर्स' है, और उसी से ईरान का नाम पारस या फ़ारस पड़ गया। ईरान के अनेक मूल निवासी भी, जो बम्बई और इस देश के दूसरे शहरों में बसते हैं, इसी कारण पारसी कहलाते हैं। आदि



पर्स नामक प्राचीन आर्य जाति के योद्धा

प्राचीन काल में उसी दक्षिणी प्रान्त 'पर्स' ही की एक आर्य जाति ने समूचे ईरान पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था,

श्रौर उन्हीं के नाम पर सारे देश का नाम पारस पड़ गया था।

ईरान का अंग्रेजी नाम पर्शिया उसी 'पारस' का रूपान्तर है। श्रौर फ़ारस की खाड़ी अंग्रेजी में 'पर्शियन गल्फ़' कहलाती है।

हिन्दुस्तान में आज जितने पारसी दिखाई देते हैं वे सब ईरान ही के मूल निवासी हैं। उनके पूर्व-पुरुष ईरान से ७वीं शताब्दी में भारत आये थे; उस समय ईरान में अरब के मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो गये थे श्रौर इन्हें वहाँ से भागना पड़ा। हिन्दुस्तान के ये पारसी अपने को ईरानी कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। इनका धर्म भी आर्यों से अधिक मिलता-जुलता है। ये अग्नि के पूजक हैं, इनके धर्मग्रन्थ ज़िन्दावस्ता में सूर्य को 'मिथ्रा' कहा गया है जो संस्कृत के 'मित्र' शब्द ही का रूपान्तर है।

ईरान के आर्य श्रौर भारतवर्ष के आर्य एक ही शाखा के दो डंठल थे, अब इसमें कोई मतभेद नहीं रहा। इन आर्यों की एक शाखा ईरान में बस गयी श्रौर दूसरी भारत में आयी। बीच का देश अफ़गानिस्तान भी आर्यों का ही देश था। आज भी अफ़गानिस्तान की हवाई सर्विस का नाम 'आर्याना हवाई सर्विस' है। वस्तुतः ईरान के आर्य भारतीय आर्यों की अपेक्षा भी कहीं अधिक प्राचीन हैं, श्रौर उनके देश का 'आर्याना' या 'ईरान' नाम कहीं अधिक सार्थक है।

ईरान एक कृषि-प्रधान देश है। यों तो भारत भी एक-कृषि-प्रधान देश है, पर ईरान में तो कृषि ही कृषि है। ले-देकर यदि कोई दूसरा उद्योग है भी तो वह कालीनों का है, श्रौर इस उद्योग में भी अधिकतर ईरान के किसान ही हैं। ईरान की कुल आबादी २ करोड़ है श्रौर उसमें डेढ़ करोड़ संख्या किसानों

ईरान का क्षेत्रफल ६॥ लाख वर्गमील है। इतने बड़े क्षेत्रफल में २ करोड़ आबादी दूसरे देशों की तुलना में बहुत थोड़ी है। भारतवर्ष का क्षेत्रफल १२ लाख वर्गमील अर्थात् ईरान से करीब दो गुना है, पर यहाँ की आबादी ३८ करोड़ अर्थात् ईरान से १६ गुनी है। इतनी विरल आबादी का एक शुभ परिणाम यह है कि पिछड़ा हुआ देश होने के बावजूद ईरान का किसान भारत की अपेक्षा अधिक सुखी है। उसके पास निज का मकान है, खाने-पीने को अनाज है और हर किसान परिवार में सोने-चाँदी के दो-चार ज़ेवर भी मिल जायेंगे।



भारी वजन उठाने की एशियाई प्रतियोगिता में सर्वप्रथम आनेवाला ईरानी पहलवान

ईरान प्राचीन काल से अपने साहित्य और वीरता के लिए प्रसिद्ध रहा है। ईरान के घोड़ों और घुड़सवारी की गाथाएँ किसने न सुनी होंगी? आज भी ईरान के सर्वप्रिय खेल कुश्ती और फुटबाल हैं। साहित्य और वीरता का यह मेल अद्भुतव आश्चर्यजनक जरूर प्रतीत होता है, पर मालूम होता है कि यह आर्यों का स्वाभाविक गुण था। तभी तो भारत का प्राचीन इतिहास भी इन्हीं दो गुणों का इतिहास भी है।

इस अद्भुत मेल का रहस्य शायद ईरान का प्राकृतिक

सौन्दर्य और उत्तम जलवायु है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने उन्हें कविता और उत्तम जलवायु ने उन्हें स्वास्थ्य दिया।

प्राचीन काल में ईरानियों ने अनेक दिग्विजय-यात्राएँ कीं। एक समय था कि उनके साम्राज्य की सीमा एक तरफ़ तो भारत में पंजाब तक थी और दूसरी तरफ़ यूनान और भूमध्य-सागर के अन्य देश उनके अन्तर्गत थे। उत्तर में ताशकन्द और अज़रबेजान, जो आज रूसी इलाके हैं, कभी ईरान के थे। सच यह है कि सिकन्दर और कतिपय अन्य यूनानी सम्राटों को छोड़कर संसार के किसी भी दूसरे देश की तुलना में ईरान की दिग्विजय-यात्राएँ अधिक रही हैं।

जहाँ तक साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध है ईरान संसार के किसी भी दूसरे देश की तुलना में अपने अतीत पर कम गौरव नहीं कर सकता। भारतवर्ष पर तो फारसी भाषा, साहित्य और संस्कृति की छाप किसी भी दूसरे देश की तुलना में आज भी अधिक है। इन सब दृष्टियों से ईरान देश से निकट-तम परिचय प्रत्येक भारतवासी के लिए नितान्त आवश्यक है।

ईरान का भौगोलिक महत्व

ईरान पूर्व और पश्चिम के बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसके पूर्व में अफ़गानिस्तान और पाकिस्तान, पश्चिम में तुर्की और ईराक तथा उत्तर में कैस्पियन सागर व रूस हैं। ईरान का दक्षिणी तट ईरान की खाड़ी तथा ओमान की खाड़ी के साथ-साथ मीलों चला गया है।

ईरान चिरकाल से भारत की ढाल बनकर रहा है। भारत से यहाँ हमारा अभिप्राय विभाजन के पूर्व के भारत से है। ब्रिटिश शासन-काल में अंग्रेजों ने सदैव इस बात की ओर सतर्क

हाथ में न चली जाये। नैपोलियन को इसी ढाल ने भारत में आने से रोके रखा, और रूस के भारत की ओर बढ़नेवाले कदमों को भी इसी ढाल ने अनेक बार अपने ऊपर झेला। ईरान यदि इस तरह ढाल बनकर न रहता तो कह नहीं सकते कि भारतवर्ष के इतिहास की दिशा आज क्या होती। सन् १७६८ में, नैपोलियन बोनापार्ट ने अपनी भारत-विजय की योजना को चरितार्थ करने के लिए ईरान के शाही दरबार में अपना एक विशेष दूत भेजा था ताकि फ्रांसीसी सेनाओं को ईरान के बीच से गुज़रकर भारत जाने की इज़ाजत मिल जाये। अपने २३ अक्तूबर, १८०७ के अङ्क में, लन्दन के दैनिक अखबार 'टाइम्स' ने उन दिनों लिखा था : 'फ्रांस की इस समय सब से बड़ी कोशिश यह है कि उसे किसी तरह ईरान से होकर भारत जाने की इजाजत मिल जाये।'

१८वीं शताब्दी के अन्त तक ईरान पूर्व और पश्चिम के मध्य एक-मात्र रास्ता था। उस समय इसकी भौगोलिक स्थिति आज की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी। पर सन् १८६९ ईसवी में स्वेज् नहर के बन जाने से और उधर प्रशान्त महासागर को बाल्टिक सागर से जोड़नेवाली ट्रांस-साइबेरियन रेलवे लाइन के खुल जाने से ईरान का भौगोलिक महत्व कुछ कम हो गया। ईरान से होकर जानेवाले अन्तर्राष्ट्रीय मार्गों पर ऊँटों के काफिलों के निशान मध्यम पड़ने लगे। पर आज हवाई याता-यात का जमाना आ जाने से ईरान फिर एक बार अपने प्राचीन भौगोलिक महत्व को तेजी से हासिल कर रहा है। मालूम होता है, इतिहास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे वह

जीवन व्यक्ति का हो अथवा देश का, अपने-आपको अनिवार्य रूप से दोहराता है।

ईरान चारों ओर पर्वतों से घिरा है। इसके उत्तर में अलबुर्ज़ की पर्वत-मालाएँ हैं, जो उत्तर-पश्चिम की ओर फैलती हुई तुर्की के उत्तरी भाग को छूती हैं। ईरान की सबसे ऊँची पहाड़ी चोटी 'देमावन्द' जो १८ हज़ार फुट से कुछ अधिक है, इन्हीं अलबुर्ज़ पर्वत-मालाओं में है।

अलबुर्ज़ के साथ-साथ लगी खोरासान की पहाड़ियाँ हैं। ये पहाड़ियाँ ईरान के उत्तरपूर्व में हिन्दुकुश पर्वत-माला (अफ़गानिस्तान) में समाप्त होती हैं।

उत्तर की इन दो पर्वत-मालाओं के अतिरिक्त दो पर्वत-मालाएँ और हैं। एक पर्वत-माला का नाम है जैगरोज़ और दूसरी का नाम है मकरान। जैगरोज़ पर्वत-माला ईरान के दक्षिण-पश्चिम से शुरू होकर उत्तर-पश्चिम तक चली गयी है। देश के समूचे पश्चिम तट पर यह पर्वत-माला प्रहरी की भाँति खड़ी है। मकरान की पहाड़ियाँ ईरान के दक्षिण-पूर्व में हैं और वहाँ वे बिलोचिस्तान की पहाड़ियों से जा मिलती हैं।

चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ ईरान का बीच का पहाड़ी मैदान ही वास्तविक ईरान है। इसे ईरान का हृदय कह सकते हैं। इसी पहाड़ी मैदान में ईरान की राजधानी तेहरान व दूसरे बड़े-बड़े शहर हैं जिनका यथास्थान वर्णन किया जायेगा।

इस पहाड़ी मैदान की समुद्र-तट से औसत ऊँचाई साढ़े तीन हजार फुट है। ईरान एक ठंडा मुल्क है। बीच का यह पहाड़ी मैदान केवल एक ही ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ

नहीं है, और वह दिशा है पूर्व की। पूर्व की ओर यह मैदान सीस्तान में जाकर समाप्त हो जाता है। सीस्तान, ईरान का वह इलाका है जो अफ़गानिस्तान और बिलोचिस्तान की सीमाओं पर स्थित है। ईरान में सबसे अधिक गर्मी सीस्तान में पड़ती है।

ईरान का जलवायु

ईरान की जलवायु इतनी विविधताओं और विचित्रताओं को लिये हुए है कि भूगोल-शास्त्रियों को इस जलवायु का अलग नामकरण करने का साहस नहीं हुआ। वे इसे 'ईरानी जलवायु' के नाम से पुकारते हैं। ईरान में गरम-से-गरम और ठंडी-से-ठंडी जलवायु उपलब्ध है। अधिक-से-अधिक वर्षा ६० इंच अलबुर्ज़ पर्वतमाला के कुछ भागों में, और कम-से-कम २ इंच वर्षा सीस्तान में साल-भर में होती है। इसी प्रकार सर्दी और गर्मी का भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते-जाते भारी फ़र्क पड़ जाता है। ईरान की राजधानी तेहरान व उसके आस-पास के मशेद आदि नगरों में सर्दी के दिनों में (जनवरी-फरवरी) तापमान ३४° या ३५° फारेनहाइट रहता है, और उन्हीं दिनों में अबादान का तापमान ५३° और उसी क्षेत्र के जास्क नगर का तापमान ६७° फारेनहाइट होता है। यही हाल गर्मी का है। तेहरान और आसपास के शहरों में जून-जुलाई में औसत तापमान ८५° फारेनहाइट और अबादान में उन्ही दिनों तापमान ६७°-६८° हो जाता है।

ईरान के एक बहुत बड़े भाग में रेत के ऊँचे-ऊँचे टीले और विस्तृत रेगिस्तान हैं। पूर्वी भाग में तो ये टीले कहीं-कहीं ७०० फुट ऊँचे हैं, और इतने ऊँचे रेत के टीले संसार के किसी

दूसरे देश में नहीं मिलते। रेत के इन ऊँचे टिब्बों और टीलों से भरे रेगिस्तानों को, जो ईरान के पूर्वी भाग में हैं, 'लूत' कहते हैं। ये लूत इतने खुश्क हैं कि अनेक छोटी-छोटी नदियाँ यहाँ तक आते-आते एकदम ग़ायब हो जाती हैं, और कोई नहीं कह सकता कि इस ओर कभी जल देवता ने पदार्पण भी किया है। इन लूतों से रेत की भयंकर आँधियाँ साल-भर उठती रहती हैं। सीस्तान पर तो इन आँधियों का विशेष प्रकोप है।

तिमासी आँधियाँ

ईरान के उत्तर-पश्चिम व उत्तरी भाग से गर्मी के मौसम में एक खास तरह की आँधियाँ उठती हैं जिन्हें ईरान के लोग 'शशमाल' आँधियाँ कहते हैं। ये शशमाल आँधियाँ जून के मध्य से लेकर सितम्बर के मध्य तक तीन महीनों में लगातार उठती रहती हैं। इन आँधियों में गर्द-गुबार के अतिरिक्त नमक का अंश भी रहता है। ये आँधियाँ इतनी गरम और खुश्क होती हैं कि आदमी भुन जाये। शशमाल के दिनों में हर ईरानी अपने घरों के दरवाज़े बन्द रखता है। ये ईरान का सब से बड़ा अभिशाप हैं।

फिर भी ईरान का जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से आदर्श है। शशमाल के तीन महीनों में आँधियों के असर से अपने शरीर की रक्षा कर ली जाये, जो कि कोई बड़ी बात नहीं है, तो साल के बाकी महीनों का मौसम शरीर को पुष्टि और कान्ति देनेवाला है। पानी तो, जिसका स्रोत पहाड़ी चश्मे हैं, निस्सन्देह अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। यही कारण है कि ईरानी लोगों के चेहरे आमतौर पर लाल और शरीर पुष्ट होता है। ईरान में बहुतायत से पैदा होनेवाले मेवों का भी उस स्वास्थ्य में कम हाथ नहीं है।

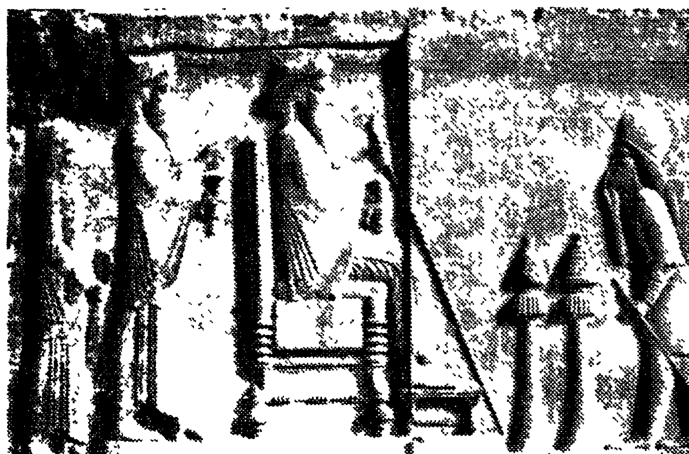
२. ईरान का इतिहास

ईरान का दूर से दूर तक का इतिहास ५५० ईसवी पूर्व से शुरू होता है। उस समय ईरान पर अक्मीनियन वंश का राज्य स्थापित हुआ और इस राज्य के संस्थापक का नाम था साइरस। पर इस वंश के सर्वाधिक पराक्रमी सम्राट् दारा-ए-आज़म हुए। उनकी मृत्यु ४८६ ई० पू० में हुई। करीब-करीब उन्हीं दिनों भारत में महात्मा बुद्धि की मृत्यु हुई। ईरान और भारत के तत्कालीन इतिहास की एक आश्चर्यजनक समता इस बात में है कि दोनों देशों में लगभग एक ही समय आर्य संस्कृति के खिलाफ, जिसमें अनेक देवी-देवताओं और कर्मकांड ने जोर पकड़ लिया था, एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। ईरान में उस विद्रोह का झंडा ज़रथुस्त्र और भारत में महात्मा बुद्ध ने खड़ा किया। ज़रथुस्त्र का महान् धर्मग्रन्थ ज़िन्दावेस्ता है



दारा-ए-आज़म के राजमहल का प्रहरी

और उसके माननेवाले पारसी आज भी हिन्दुस्तान में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। पारसी धर्म में बौद्ध मत की तरह पवित्र आचरण पर कर्मकांड की अपेक्षा अधिक बल दिया गया है। अनेक देवी-देवताओं के स्थान पर एक ईश्वर की उपासना का विधान है, और उस ईश्वर का नाम 'आहुरमाज़्दा' है। जिस प्रकार भारत में बौद्ध-धर्म को तत्कालीन मौर्य राज्य-वंश से बल



तख्त-ए-जमशेद के दरबार में दारा-ए-आज़म

प्राप्त हुआ ठीक उसी प्रकार ईरान में ज़रथुस्त्र का धर्म भी अक्मीनियन राज्य-वंश का सहारा लेकर आगे बढ़ा; और फिर तो वह समूचे ईरान का व्यापक धर्म बन गया।

अक्मीनियन राज्य-वंश के महापराक्रमी सम्राट् दारा-ए-आज़म के खुदवाये हुए अनेक शिलालेख ५२० ई० पू० के आसपास के मिलते हैं। उन शिलालेखों में जिन पूर्ववर्ती राजाओं का उल्लेख है वे नाम आर्यों के हैं। दारा-ए-आज़म के द्वारा खुदवाये ५२० ई० पू० के एक शिलालेख में लिखा है: 'मैंने गोमत

राजा के अनेक देवी-देवताओंवाले धर्म का उच्छेद करके पवित्र आहुरमाज़दा की उपासनावाले ऐकश्वरवाद की इस देश में स्थापना कर दी है।'

ईरान के गत ढाई हज़ार वर्ष के इतिहास को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है :

१. इस्लाम की स्थापना से पूर्व का इतिहास (५५० ई० पू० से ६५० ईसवी तक) यह समय ११०० वर्ष का है।
२. इस्लाम की स्थापना के बाद से अब तक का इतिहास (६५० ई० से अब तक) यह समय लगभग १३०० वर्ष का है।

उपरोक्त प्रथम भाग में ईरान में तीन राज्य-वंशों ने राज्य किया। पहले राज्य-वंश का नाम, जैसा कि ऊपर उल्लेख



तख़्त-ए-जमशेद में राजमहल के स्तम्भ का एक सिरा

किया जा चुका है, अक्मीनियन राज्य-वंश था। इस राज्य-वंश के संस्थापक का नाम साइरस था। साइरस के बाद इस

राज्य-वंश में दारा-ए-आज़म हुआ। इन दोनों ही राजाओं के समय में ईरान में प्राचीन फ़ारसी भाषा (जो आज की फ़ारसी से नितान्त भिन्न थी) का पूर्ण अभ्युदय हुआ, और उस भाषा के माध्यम से पारसी धर्म का व्यापक प्रचार हुआ।

अक्मीनियम राज्य-वंश का काल ३३० ई० पू० में समाप्त हो जाता है। तब से, २२६ ईसवी अर्थात् क़रीब ५०० वर्ष तक ईरान में पार्थियन वंश का राज्य रहा। इन ५०० वर्षों को ईरानी इतिहास का 'अन्धकारमय युग' कहा जाता है। इसी युग में (३३४ ई० पू०) सिकन्दर ने ईरान पर आक्रमण किया। सिकन्दर ने उन्हीं दिनों भारत पर भी आक्रमण किया था, पर वह भारत का कुछ अधिक नहीं बिगाड़ सका था, और अन्त में परास्त होकर ही उसे यहाँ से जाना पड़ा था। पर ईरान का उसने काफ़ी कुछ बिगाड़ा। उसके आक्रमण के परिणामस्वरूप अक्मीनियन राज्य-वंश, जो ईरान की सुख-समृद्धि का प्रतीक था नष्ट-भ्रष्ट हो गया और उसके स्थान पर पार्थियन व अन्य छोटी-छोटी पहाड़ी जातियों का देश के अलग-अलग भागों में प्रभुत्व स्थापित हो गया।

उपरोक्त 'अन्धकारमय युग' के सम्बन्ध में एक बात और भी स्मरणीय है। इस्लाम की स्थापना से पूर्व के ईरान के इतिहास में जो ११०० वर्ष का है, केवल यही युग था जब ईरान में पहले-पहल किसी विदेशी संस्कृति और सभ्यता का प्रवेश हुआ, और वह संस्कृति व सभ्यता थी यूनान की। वह ईरान में सिकन्दर के आक्रमण के साथ आयी। यद्यपि उस संस्कृति को शीघ्र ही ईरान की तत्कालीन आर्य संस्कृति ने अपने भीतर पचा लिया, पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह उसके

प्रभाव से सर्वथा अछूती रही। इस अन्धकारमय युग में ईरान न केवल अपनी संस्कृति व सभ्यता का उज्ज्वल प्रकाश खो बैठा, बल्कि उसकी शासन-व्यवस्था और प्रजा का सुख-चैन भी शिथिल पड़ गया।

पर ईरान ने शीघ्र करवट बदली। सन् २२६ ईसवी में पार्थियन राज्य-वंश की समाप्ति करके आर्देशर ने सैसेनियन राज्य-वंश की स्थापना की और यह राज्य-वंश सन् ६५० ईसवी तक, करीब सवा चार सौ वर्ष रहा। यह फिर से एक बार ईरान में सुख, शान्ति, एकता और ऐश्वर्य का युग ले आया।

सैसेनियन राज्य-वंश में ईरान की प्राचीन सभ्यता ने नयी चमक हासिल की। पारसी धर्म जो सिकन्दर के आक्रमण से धराशायी हो गया था, एक बार फिर से उठ खड़ा हुआ और दुगुने वेग से समूचे देश में व्याप गया। १०वीं शताब्दी के महान् ईरानी ऐतिहासिक अब्दुल कासिम फ़िरदौसी ने अपने 'शाहनामा' में इस युग की प्रशंसा में बड़े विस्तार से लिखा है। फ़िरदौसी को यद्यपि मूल रूप से इतिहासकार न कहकर एक महान् लेखक के रूप में स्मरण किया जाना चाहिए, पर उसका 'शाहनामा' उस ज़माने का एकमात्र ऐसा ग्रंथ है जिसमें पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हो जाती है।

ईरानी इतिहास का द्वितीय काल

ईरान का आज जो रूप है उस पर मुस्लिम संस्कृति का गहरा प्रभाव है। उस रूप को ईरान की प्राचीन आर्य संस्कृति तथा मुस्लिम संस्कृति का मिश्रण कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस दृष्टि से, ईरान पर मुस्लिम आक्रमण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। उस घटना को केन्द्र मानकर प्रायः सभी इतिहासकारों

ने ईरानी इतिहास का एक अलग खण्ड मान लिया है, जिसे द्वितीय काल कहते हैं।

सन् ६३७ ई० में अरब के मुसलमानों का ईरान पर प्रथम आक्रमण हुआ, और ६५० में अन्तिम सैसेनियन राजा माज़्द गिर्द की मृत्यु हो गयी। ईराक और सीरिया उन दिनों खिलाफ़त के दो बड़े केन्द्र बने और वहाँ से सम्पूर्ण मध्य एशिया, विशेषतया ईरान में इस्लाम का जोरों से प्रचार हुआ। इस्लाम के सर्वग्रासी प्रचार में केवल तलवार का जोर था, ऐसा मान लेना गलती होगी। इसमें सन्देह नहीं कि वह जहाँ भी फैला उसे ऊपर के कुछेक निहित स्वार्थों से टक्कर लेने में तलवार का सहारा लेना पड़ा, पर उसके अपने भीतर समानता और भ्रातृत्व भावना का एक ऐसा ज़ोर था जो निम्न श्रेणी के पददलितों को स्वभावतया अपनी ओर आकृष्ट करता था। अगर केवल तलवार का ज़ोर होता तो ईरान के महान् दार्शनिक, कवि और विद्वान् लोग कलम लेकर इस्लामी साहित्य, मर्यादाओं और दार्शनिक विचारों के प्रचार में अपने जीवन खपा न देते। सच यह है कि इस्लाम को एक शानदार दार्शनिक और साहित्यिक रूप प्रदान करने में ईरान का बहुत बड़ा हाथ है। ईरान की कलम का स्पर्श पाकर इस्लाम एक अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में उभर-कर आया।

तीन विशेषताएँ

अरब के मुसलमानों के आक्रमण के बाद ईरान का एक तरह से कायापलट हो गया। उसके धर्म, भाषा और रक्त तक में अरब छा गया। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उस समय ईरान में ज़रथुस्त्र का पारसी धर्म प्रचलित था। यह पारसी

धर्म, जिसमें आज भी अग्नि की पूजा प्रधान है, आर्य धर्म ही की एक शाखा थी। पारसी लोग स्वयं भी रक्त की दृष्टि से विशुद्ध आर्य थे; पर अरबों के आक्रमण ने ईरान में आर्य संस्कृति को टिकने नहीं दिया। दोनों में कुछ मौलिक भेद थे। जिन ईरानियों ने अपने प्राचीन धर्म, भाषा, संस्कृति, साहित्य और रक्त को अछूता रखने की कोशिश की उन्हें देश छोड़कर बाहर भागना पड़ा। हिन्दुस्तान में आज जितने भी पारसी दिखाई देते हैं, उनके पुरखा लोग उसी ईरान से यहाँ आये थे। वे पहले-पहल गुजरात में आकर बसे थे। पारसियों की सबसे अधिक संख्या आज भी बम्बई, सूरत व गुजरात के अन्य नगरों में ही है।

अरब-आक्रमण से पूर्व ईरान में फ़ारसी भाषा की लिपि प्राचीन आर्य-लिपि ही का एक रूप थी और वह आर्य-लिपियों की भाँति बायें से दायें लिखी जाती थी। आक्रमण के बाद वहाँ की लिपि बदलकर अरब लिपि हो गयी जो दायें से बायें लिखी जाती है। इतना ही नहीं, प्राचीन फ़ारसी भाषा में अरबी की शब्दावली भी समा गयी।

पहलवी भाषा

सुविधा और स्पष्टता के लिए अरब-आक्रमण से पूर्व की प्राचीन फ़ारसी भाषा को पहलवी भाषा और बाद की भाषा को फ़ारसी भाषा कहा जाता है। आज 'फ़ारसी' कहने से जिस लिपि और भाषा का चित्र सामने आता है वह चित्र पहलवी भाषा से इतना अधिक भिन्न है कि पहलवी भाषा के लिए 'फ़ारसी' शब्द का प्रयोग भ्रम पैदा कर सकता है, फिर चाहे उसे 'फ़ारसी' न कहकर 'प्राचीन फ़ारसी' ही क्यों न कहा जाये।

दूसरी विशेषता इस काल की यह थी कि ईरानी और अरबी लोग घुल-मिलकर रक्त की दृष्टि से भी एक हो गये, उनमें कोई भेद ही नहीं रहा। इस काल में दो संस्कृतियों ने आपस में मिलकर एक तीसरी संस्कृति को जन्म दिया। धर्म इस्लाम जरूर हो गया पर ईरान में इस्लाम भी अपने पूर्व रूप में टिका न रह सका। उसने शिया सम्प्रदाय का एक नवीन रूप ग्रहण कर लिया। यही इस काल की तीसरी विशेषता है। शिया सम्प्रदाय ग्रहण कर लेने के कारण ईरान शेष मुस्लिम संसार से बहुत समय तक अलग-थलग रहा।

यह काल लगभग १२०० वर्ष (सन् १८२८) तक का माना जाता है। सन् १८२८ से अब तक के लगभग सवा सौ वर्ष को आधुनिक काल कहते हैं। पूर्व इसके कि हम आधुनिक काल पर कुछ कहें इस काल की साहित्यिक उन्नति के सम्बन्ध में दो शब्द कहना आवश्यक होगा।

ईरान के जितने भी बड़े कवि और दार्शनिक हुए वे इसी काल में हुए। इस काल की प्रथम तीन शताब्दियों (७वीं, ८वीं ९वीं) में तो साहित्य, काव्य और दर्शन की धारा अपनी धीमी गति में रही, पर १०वीं शताब्दी तक आते-आते वह एकदम उभर गयी थी, मानो अखाड़े में आने से पहले वह बहुत देर तक तैयारी करती रही हो। फ़ारसी साहित्य का यह उभार क़रीब तीन शताब्दियों (१०वीं, ११वीं और १२वीं) तक रहा। इसी काल में फ़िरदौसी, शेख़सादी, जलालुद्दीन रूमी और उमर ख़य्याम जैसे महाकवि और दार्शनिक आविर्भूत हुए। उन्होंने फ़ारसी की नींव हमेशा के लिए मज़बूत कर दी। उनकी तुलना १५वीं शताब्दी के महान् अंग्रेज़ी लेखकों—बेकन, स्पेंसर

और शैक्सपीयर—से की जाये तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि उन्होंने फ़ारसी को एक सुघड़ व सुन्दर रूप देने में वही काम किया जो इन लेखकों ने अंग्रेजी के लिए किया।

साहित्य और दर्शन का यह विकास ईरान में इतना प्रबल था और ईरानी जीवन में इतना निखार आ गया था कि १५ वीं और १६वीं शताब्दियों में हलाकू, चंगेज़ और तैमूर लंग-जैसे तातार-आक्रमणकारी राजनीतिक दृष्टि से विजयी होकर भी सांस्कृतिक दृष्टि से पराभूत हो गये—वे ईरान की सांस्कृतिक बाढ़ में डूब-से गये।

आधुनिक काल

१९वीं शताब्दी से पहले कविता और दर्शन के भरपूर विकास के बावजूद जन-साधारण में जागृति के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हुए थे। १९वीं शताब्दी ईरान ही में नहीं, पूर्व के सभी देशों में जागृति की एक नयी लहर ले आयी। साधारण जनता को अपने अधिकारों का पहली बार भान हुआ, उसमें आत्मसम्मान की चेतना लहरा उठी और राष्ट्रीयता के अंकुर चारों ओर फूटते दिखाई दिये।

राष्ट्रीयता की इस लहर को उकसाने में रूस की उत्तेजक कार्यवाहियों ने चाबुक का काम किया। ताशकंद और तबरेज़ आदि ईरान के उत्तरी इलाकों पर रूस ने जब कब्जा कर लिया तो समूचा देश आशंका से भर उठा। लेकिन आशंका की यह भावनाएँ वरदान ही सिद्ध हुई। आज भी रूस और ईरान के पारस्परिक सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में उस आशंका का ताप मौजूद है।

ईरान की यह आशंका ईरान तक ही सीमित न रही,

उसने शीघ्र अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले लिया। भारत के ब्रिटिश शासकों को तो मानो पिस्सू पड़ गये। ईरान पर रूस का प्रभुत्व छा जाने का मतलब उनके लिए कम गम्भीर न होता। उधर फ्रान्स भी उन दिनों ईरान के मार्ग से भारत पर आक्रमण करने के स्वप्न देख रहा था। इन दोनों शक्तियों से भारत को बचाये रखने के लिए ईरान की रक्षा करना अंग्रेजों के लिए अनिवार्य हो गया। संक्षेप में ईरान रूस, फ्रान्स और इंग्लैण्ड के दाँव-पेंचों का अखाड़ा बन गया। और इस अखाड़े में अंग्रेजों की विजय हुई। सन् १८०० में रूस और फ्रान्स मिलकर भारत-आक्रमण की एक योजन बना रहे थे, पर उसके पाँच साल बाद उन दोनों की आपस ही में ठन गयी।

इस दाँव-पेंच का परिणाम ईरान के लिए बड़ा शुभ हुआ। तीनो ही शक्तियों को ईरान से बाहर रहना पड़ा, वे भीतर न घुस सकीं; सन् १८२८ में अन्तिम रूप से रूस और ईरान के मध्य समझौता हो गया और रूस के कदम हमेशा के लिए ईरान की सीमा के उस पार रुक गये। इस समझौते से ईरान का एक बहुत बड़ा सिर-दर्द दूर हो गया और उसे अपनी उन्नति की ओर पूरा ध्यान देने का अवसर मिला। इसी से ईरान के आधुनिक काल का आरम्भ सन् १८२८ से माना जाता है।

आधुनिक काल में, ईरान में जनतंत्र की नींव पड़ी। फौजदारी और दीवानी कानून बनाये गये, शिक्षा का विस्तार हुआ, इंजीनियरिंग तथा अन्य वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया गया और विश्वविद्यालय कायम हुए।

दो महायुद्ध

गत दोनों महायुद्धों में ईरान का महत्व बढ़ गया। दोनों

ही महायुद्धों में ईरान ने इस बात की पूरी कोशिश की कि वह तटस्थ रहे, पर अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण उसके लिए ऐसा करना लगभग असम्भव है। प्रथम महायुद्ध में यद्यपि उसने खुलकर किसी एक अथवा दूसरे फौजी शिविर में अपने को शामिल नहीं किया, पर वह ब्रिटिश, रूसी व जर्मन फौजों को समय-समय पर ईरान की जमीन पर आने से रोक भी नहीं सका।

प्रथम महायुद्ध के ठीक बाद ईरान में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। तेहरान में एक पत्रकार ज़ियाउद्दीन ने एक सैनिक अफ़सर रज़ाख़ान की सहायता से सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और देखते-ही-देखते सरकार का तख़ता उलट दिया। पर शीघ्र ही इस पत्रकार को यह बात विदित हो गयी कि वास्तविक शक्ति उसके हाथ में न होकर रज़ाखान के हाथ में है। १३ अक्तूबर १९२५ को सचमुच रज़ाख़ान ने इस बात को साबित कर दिखाया। उसने ईरानी विधान सभा की एक ख़ास बैठक एकाएक बुलाकर अपने पूर्ववर्ती राज्य-वंश की समाप्ति कर दी। उन दिनों ईरान पर काजर राज्य-वंश का शासन था। उसका राजा अहमदशाह उस समय यूरोप गया हुआ था। यह सब उसकी अनुपस्थिति में हुआ।

रज़ाख़ान पहलवी वंश का था। उसी ने पहलवी राज्य-वंश की नींव डाली जो आज भी ईरान की राजगद्दी पर है। ईरान के वर्तमान शाह शापुर मुहम्मद रज़ा उसी रज़ाख़ान के पुत्र हैं। सन् १९४१ में द्वितीय महायुद्ध के दौरान, मित्र-राष्ट्रों के प्रति विशेष सहानुभूति रखने का उन्हें यह पुरस्कार मिला कि उनके पिता को गद्दी से उतरना पड़ा और वे शाह बना दिये गये। उन दिनों द्वितीय महायुद्ध अपने पूरे ज़ोर पर था। शाहपुर

मुहम्मद रज़ा ने गद्दी पर बैठते ही एक विशेष घोषणा के द्वारा ईरान की तटस्थता की नीति को समाप्त कर दिया। २६ जनवरी १६४२ के दिन ब्रिटैन, रूस और ईरान में एक त्रिदलीय समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। ईरान खुले तौर पर मित्र-राष्ट्रों का पक्षपाती बन बैठा। इसके क़रीब एक साल बाद, ६ सितम्बर १६४३ के दिन ईरान ने बाकायदा जर्मनी के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा भी कर दी। उसी साल के आख़िरी दिनों में तेहरान में चर्चिल, रूज़वेल्ट और स्तालिन के मध्य महत्वपूर्ण कानफ्रेन्स हुई जो तेहरान कानफ्रेन्स के नाम से प्रसिद्ध है।

द्वितीय महायुद्ध एक प्रकार से ईरान के लिए वरदान सिद्ध हुआ। रूस हिटलर के आक्रमण का पूरी तरह मुकाबला कर सके, इसके लिए ज़रूरी था कि मित्रराष्ट्रों द्वारा उसे ईरान के मार्ग से रसद तथा सेना की पूरी मदद पहुँचाई जाये। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए ईरान की सड़कों, बन्दरगाहों और रेलों में बड़े-बड़े सुधार किये गये। नयी सड़कें व रेलें भी बनायी गयीं। पर दुर्भाग्य की बात है कि सड़कों व रेलों का बिछाया गया वह जाल महायुद्ध के बाद ईरान के कुछ अधिक काम न आ सका। ईरान की पथरीली ज़मीन में जहाँ उद्योग-धन्धे अभी नहीं के बराबर हैं बस्तियाँ एक दूसरे से बहुत दूरी पर हैं, वे रेलें और सड़कें महायुद्ध के बाद कुछ विशेष लाभ की सिद्ध नहीं हुईं।

३. ईरान के शाह मुहम्मद रज़ा शाह पहलवी

सन् १९४१ में, जब कि जनरल रोमेल सिकन्दरिया के द्वार तक आ पहुँचा था, वॉन क्लीस्ट के कदम काकेशस की तराई में प्रविष्ट हो चुके थे और रूस व ब्रिटेन की फ़ौजें ईरान के अनेक भागों पर छा गयी थीं, २२ वर्ष के युवराज शापुर मुहम्मद रजा एक नाटकीय ढंग से ईरान के शहंशाह बना दिये गये।

मुहम्मद रज़ाशाह पहलवी का अपना व्यक्तित्व है। उनका उल्लेख किये बिना ईरान का अध्ययन अधूरा होगा।

सन् १९१९ में, २६ अक्तूबर को तेहरान में रज़ा का जन्म हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा तेहरान में और उच्च शिक्षा स्विट्ज़रलैंड में हुई। सन् १९३९ में, २० साल की उम्र में, अपना अध्ययन समाप्त करके वे ईरान लौटे और अपने देश की सेना में भरती हो गये।

मुहम्मद रज़ा शाह पहलवी अपने स्वभाव और विचारों में अपने पिता रज़ाखान से बहुत भिन्न हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनके पिता रज़ाख़ान भी एक उच्च कोटि के शासक थे, उन्होंने देश में अमन-चैन कायम कर दिया था, मुल्लाओं को राजनीति से सदा के लिए बाहर खदेड़ दिया था, स्त्रियों को पुरुष की वासना से मुक्त कर दिया था, करों की ठीक तरह से वसूली करवाकर खज़ाने को मज़बूत बनाया था और सड़कों



ईरान के चतुर शासक मुहम्मद रज़ा शाह पहलव

व जेलों में भी प्रर्याप्त सुधार किये थे; पर उनमें उस उग्र प्रजातंत्रात्मक भावना का अभाव था जो उनके पुत्र, ईरान के वर्तमान शाह, रज़ा शाह पहलवी में दृष्टिगोचर होती है। इसका एक बड़ा कारण उनकी उदार ढंग की शिक्षा और व्यक्तिगत संस्कार हैं। अपने पिता के प्रति असीम आदर का भाव होते हुए भी वे अपने पिता की अपेक्षा कहीं अधिक प्रजावत्सल हैं। देश के प्रति उनका उत्कृट प्रेम सर्वविदित है। शाह होते हुए भी उनके रोम-रोम में प्रजातंत्र की भावनाएँ व्याप्त हैं। १६ सितंबर १६४१



शाह के सिर पर राजमुकुट रखनेवाले शियाओं के धर्म गुरु

को सिंहासनारूढ़ होते समय उन्होंने कहा था :

'देश की इस संकट की घड़ी में जब कर्त्तव्य की भावना ने मुझे इस बात के लिए प्रेरित किया है कि मैं शासन की डोर अपने हाथ में ले लूँ, मैं इस बात का खुले आम कुरान पर हाथ रखकर प्रण लेता हूँ कि मैं देश के विधान को सर्वोपरि रखूँगा और

अपने अन्तःकरण की आवाज़ के खिलाफ़ कभी नहीं चलूँगा।'

अपने प्रथम रेडियो भाषण में शाह ने कहा था : 'प्रजातंत्र में किसी देश की सत्ता का वास्तविक सूत्र उसकी प्रजा के हाथ में रहता है। मैं तो उस सत्ता का एक वैधानिक प्रतीक हूँ। मैं कुरान शरीफ़ की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं देश के विधान को सदा महत्व की दृष्टि से देखूँगा।'

२१ मार्च ईरान का नववर्ष का दिन होता है। २१ मार्च १९४७ को नये साल का भाषण देते हुए शाह ने भरे दिल से कहा था : 'अपने देश के ग़रीब और संकट-ग्रस्त करोड़ों व्यक्तियों पर, जो जीवन में सब तरह सामाजिक न्याय से वंचित हैं शासन करने में भला मुझे क्या खुशी हो सकती है !'

आज के प्रजातांत्रिक युग में किसी देश के बादशाह की प्रशंसा करना कुछ बेसुरा-सा मालूम होता है, पर ईरान के शाह ने अपने उदार विचारों और निःस्वार्थ देश-प्रेम के कारण उस बेसुरेपन को सर्वथा दूर कर दिया है। देश की जनता के प्रति उनके सच्चे प्रेम का एक प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी सारी व्यक्तिगत भूमि-सम्पत्ति २४ फरवरी १९५० के एक फरमान के अनुसार ईरान के किसानों में बाँट दी है। यूँ अपनी इस भूमि-सम्पत्ति से होनेवाली आय को पहले भी वे अपने निज के लिए इस्तेमाल न करके ग़रीबों में बाँट देते थे, पर सन् १९५० में तो उस सम्पत्ति पर उन्होंने अपना हर तरह का दावा ही छोड़ दिया। ईरान के शाह शायद इस मामले में दूसरे बादशाहों के लिए पथप्रदर्शक हैं कि उनसे उनके देश का अदना-से-अदना आदमी भेंट कर सकता है। वे अनेक बार ग़रीबों की झोपड़ियों में खुद चले जाते हैं। छोटे बच्चों को प्यार से गोद

में उठाते और पुचकारते हैं और ग़रीबों की सुख-दुःख की गाथाओं को ध्यान से सुनते हैं। ऐश्वर्य का अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया है।

शाह का भूदान

भारत में विनोबा के भूदान-आन्दोलन से कौन परिचित न होगा ? इस आन्दोलन ने वह क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिखाया है जो सैकड़ों कानून मिलकर न कर सकते। ईरान में तो भूमि के उचित बँटवारे की समस्या और भी विकट थी। ज़मींदारी प्रथा के उन्मूलन के लिए भारत में कानून का सहारा आसानी से लिया जा सकता था, उसमें कोई धार्मिक अड़चन नहीं थी। पर ईरान में व्यक्तिगत सम्पत्ति की बुनियाद इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों में होने के कारण बड़े-बड़े ज़मीदारों और ग़रीब किसानों के बीच की खाई को पाटना एक तरह से असम्भव था। ईरान के शाह ईरान के सबसे बड़े ज़मींदार हैं। उनकी इच्छा के ख़िलाफ़ यूँ भी कानून का पास होना सम्भव नहीं हो सकता था। पर ईरान के शाह ने स्वेच्छा से अपनी सारी भूमि का किसानों के नाम दानपत्र लिखकर एक उग्र क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने एक कानून पास करवाकर उस सारी ज़मीन को, जो अब तक सरकारी है किसानों को नाम-मात्र की लागत पर बेच देने का निर्णय कर लिया है। इसका बड़ा ही शुभ परिणाम हुआ है। एक ओर तो किसान का हृदय अपने शाह के प्रति असीम कृतज्ञता से भर गया, दूसरी ओर अपनी ज़मीन हो जाने के कारण उसके जोतने-बोने का उत्साह उसमें दुगुना हो गया। निश्चय है कि यह दुगुना उत्साह देश की पैदावार को कहीं-से-कहीं ले जायेगा। और इस

क़दम का तीसरा भारी लाभ यह हुआ है कि ईरान के अन्य ज़मींदारों को एक उचित व सुन्दर दिशा में प्रेरणा मिली है। इस प्रसंग में शाह के फ़रमान की पंक्तियाँ स्वर्णिम अक्षरों में लिखी जाने योग्य हैं। उन्होंने कहा :

'किसानों की हित-चिन्ता मेरे जीवन का सबसे बड़ा ध्येय है। मेरी चिरकाल से यह अभिलाषा रही है कि मेरी निज की भूमि-सम्पत्ति, जो मुझे अपने पूजनीय पिता से विरासत में मिली है, किसानों में बाँट दी जाये। यद्यपि उस भूमि से होने-वाली आय को मैंने कभी भी अपनी निजी मद में ख़र्च नहीं किया, वह लोक-कल्याण की मदों में ही खर्च होती रही है, पर मालूम होता है, शायद इतना काफ़ी नहीं है और इस बात की भारी आवश्यकता है कि वह भूमि अन्तिम रूप से किसानों को सौंप दी जाये। इसलिए आज मैं उस सारी भूमि-सम्पत्ति को किसानों के हवाले करता हूँ। इसके लिए उन्हें (ईरान के कानून को दृष्टि में रखते हुए) नाम-मात्र की लागत आसान किश्तों में अदा करनी होगी।'

उपरोक्त फ़रमान में जिन किश्तों का उल्लेख है, उनसे जमा होनेवाला पैसा भी उन्हीं किसानों की कल्याण-योजनाओं पर व्यय किया जायेगा।

भावनाओं पर संयम

देश-कल्याण के लिए व्यक्तिगत भावनाओं पर संयम शाह का विशेष गुण है। अपनी प्रियतमा रानी सोराया के प्रति उनके प्रेम का ज्वार कितना प्रबल था, यह किसी से छुपा नहीं पर देश के कल्याण और विधान का तकाज़ा उनकी दृष्टि में कहीं अधिक प्रबल था। उन्होंने रानी सोराया को तलाक देने में तनिक

भी हिचकिचाहट नहीं की; और दूसरे बादशाहों की तरह उन्होंने यह तलाक किसी दूसरी स्त्री के रोमांस में पड़कर दिया हो यह बात भी नहीं। वे तब से अभी तक अविवाहित हैं।

भावनाओं पर उनके संयम का एक ज्वलन्त परिचय ५ फरवरी १९४९ के दिन मिला, जब कि विरोधी दल के षड्यंत्र के फल-स्वरूप वे गोली का निशाना बनाये गये। तेहरान विश्वविद्यालय में भाषण देने के लिए वे उस दिन वहाँ आये थे। ३ बजे दिन का समय था। एक षड्यन्त्रकारी ने, जो फ़ोटोग्राफ़र के रूप में वहाँ आया था उन पर गोली दाग दी। गोली पीठ में लगी, और उनका ड्राइवर तेज़ी से उन्हें अस्पताल की ओर ले चला। वे अपने मोटर ड्राइवर को भी इतने प्रिय थे कि उससे शाह की पीड़ा देखी नहीं गयी और वह बच्चों की तरह बिसूरने लगा। शाह के दूसरे साथी भी शाह के जीवन को ख़तरे में समझकर बेहद घबरा गये। तब शाह ने धैर्य से कहा, 'कर्तव्य के मार्ग पर चलते हुए इस तरह के ख़तरे सामने आते ही हैं, उन्हें अधिक महत्व न देना चाहिए।'

ईरान के उत्तरी इलाके अज़रबेजान में सन् १९४६ में कुछ लोगों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। विद्रोहियों ने अपनी स्वतन्त्र सरकार भी स्थापित कर ली। वे इतने प्रबल हो उठे कि उनसे सीधा लोहा लेना एक भारी ख़तरे की बात समझी जाने लगी। शाह की सलाहकार परिषद्‌ ने उन पर हमला करने का सख्त विरोध किया। पर शाह ने इस अवसर पर असीम साहस का परिचय देकर सेनाओं को अज़रबेजान परकूच करने का आदेश दे दिया और देखते-ही-देखते विद्रोहियों को सदा के लिए कुचल दिया। उनके इस साहस ने सब का मन मोह लिया।

ईरान की संस्कृति में अत्यन्त प्राचीन काल से बादशाहों की सार्वभौम सत्ता की प्रतिष्ठा रही है। ईरान के वर्तमान शाह ने उस सार्वभौम सत्ता को आधुनिक युग की भावनाओं के अनुरूप ढालकर बड़ी बुद्धिमानी का परिचय दिया। वे ईरानी जनता की भावनाओं और आदर्शों के जीते-जागते प्रतीक हैं।

४. सामाजिक और आर्थिक ढाँचा

ईरान की प्राचीन संस्कृति के अनुसार सारा समाज निम्न-लिखित चार भागों में बाँटा गया है :

१. कतूज़ियान—धार्मिक गुरु, मौलवी और पठन-पाठन का धंधा करनेवाले ।

२. निस्सरियान—युद्ध करनेवाले, सेना के लोग ।

३. नस्सूदियान—खेती-बारी करनेवाले ।

४. आहनूखोशान—व्यापार करनेवाले ।

ईरान के सामाजिक ढाँचे का आधार, आज भी उपरोक्त चार वर्ण हैं । इन चार वर्णों का मूल विचार भारत के प्राचीन आर्यों की वर्ण-व्यवस्था से कितना मिलता-जुलता है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं । कहते हैं कि उपरोक्त वर्ण-व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन काल में, अक्मीनियन राज्य-वंश से भी कहीं पहले, राजा जमशेद के द्वारा, जो विशुद्ध आर्य-वंश का था, कायम की गयी थी। विद्वानों का मत है कि 'जमशेद' 'यमशक्ति' का अपभ्रंश है। 'यमशक्ति' उस सर्वप्रथम आर्य राजा का नाम था जिसने अपने अतुल पराक्रम से सुदूर अतीत में ईरान में आर्य-सत्ता स्थापित की थी और शत्रुओं के लिए भैरव रूप होने के कारण वह 'यम-शक्ति' कहलाया । कुछ भी हो, इतना तो निस्सन्देह है कि ईरान के सामाजिक ढाँचे का उपरोक्त रूप भारतीय वर्ण-व्यवस्था से

अत्यन्त मिलता-जुलता है।

ईरान का सामाजिक ढाँचा जिन वर्गों पर आज आधारित है, वे मुख्यतया ये हैं :

(क) किसान

(ख) पहाड़ी कबीले

(ग) व्यापारी

(घ) दस्तकार

(ङ) मौलवी

(च) स्त्रियाँ

(छ) अल्पसंख्यक जातियाँ

(ज) श्रमिक-वर्ग

(झ) शिक्षा-प्राप्त उच्च-वर्ग

ईरान के सामाजिक ढाँचे को पूरी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि उपरोक्त नौ वर्गों का क्रमशः संक्षिप्त परिचय यहाँ दे दिया जाये।

किसान

ईरान में किसानों की संख्या सबसे अधिक है। यद्यपि आज का युग मशीन का युग है और बड़े-बड़े ट्रैक्टरों से खेती-बारी होने लगी है, पर ईरान का किसान अब भी पुराने ढर्रे की खेती-दारी करता है और उसे मशीनी युग की हवा नहीं लगी। वह संख्या में इतना अधिक है कि ईरान के राजनीतिक ढाँचे पर भी, चुनावों के माध्यम से, उसका भारी असर है। वह स्वभाव से ईमानदार, धार्मिक, सरल, सन्तोषी और मेहनती होता है।

किसान की सारी पैदावार निम्नलिखित ५ समान भागों में विभक्त कर दी जाती है :

१. ज़मीन का मालिक

२. पानी का मालिक

३. बीज का मालिक

४. हल व बैल का मालिक

५. जोतने-बोनेवाला किसान

यद्यपि वास्तविक किसान को कुल पैदावार का केवल ५वाँ भाग ही नसीब होता है, फिर भी वह भारत के किसान की अपेक्षा अधिक खुशहाल है। इसका एक बड़ा कारण है—ईरान में घनी आबादी की समस्या का अभाव। हाल में साम्यवादी विचारधाराओं के सर्वव्यापी प्रचार का एक शुभ परिणाम उसके हक में यह हुआ है कि पैदावार में उसका हिस्सा पहले से अधिक कर दिया गया है। सन् १९४६ के एक कानून के अनुसार अब उसे ज़मीन के मालिक के भी हिस्से में से १०वाँ भाग और मिलने लगा है।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि ईरान के शाह ने अपनी निजी भूमि और सरकारी भूमि का नाम-मात्र की लागत पर किसानों में वितरण कर दिया है। इससे किसान की खुश-हाली बहुत बढ़ गयी है। खुशहाल होने के साथ-साथ वह धार्मिक प्रकृति का और कट्टर मुसलमान है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि वह साम्यवाद का कट्टर शत्रु भी है। यही कारण है कि भारी-भरकम प्रचार के बावजूद ईरान की तुदेह पार्टी व दूसरे वाम-पक्षी दलों को चुनावों में नहीं के बराबर सफलता मिली है।

पहाड़ी कबीले

ईरान के पहाड़ी कबीलों की भी अपनी एक अलग हस्ती

है और इनकी संख्या ३० लाख के लगभग है। ईरानवासियों को जितना घी, दूध और दही चाहिए वह सब इन्हीं की कृपा से मिलता है। ये गाय-भैंस पालते हैं। गर्मियों में ये ऊपर के ठंडे प्रदेशों में चले जाते हैं और सर्दियों में नीचे उतर आते हैं। ईरान अपने सुन्दर और मज़बूत घोड़ों के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसका श्रेय इन्हीं कबीलों को है। ये लोग घोड़े पालने के बेहद शौकीन हैं।

ईरानी गालीचों की ख्याति सारे संसार में है। गालीचे एक तरह से ईरान का राष्ट्रीय शिल्प है और उसका भी श्रेय इन्हीं कबीलों को है। ऊन की बुनी हुई काले रंग की छोलदारियों में, जैसी कि अक्सर कबीलों की होती हैं, आज भी ईरान का यह राष्ट्रीय शिल्प फलता और फूलता है। इसमें सन्देह नहीं कि गालीचा बुनने का उद्योग अब बड़े-बड़े शहरों जैसे इस्फ़हान, मशहद, किरमान, तबरेज़ और काशान आदि की तरफ़ तेज़ी से जा रहा है पर उसका आदिस्रोत ये कबीले ही हैं और अब भी वे इस कला में बड़े प्रवीण हैं।

कबीलों की अपनी अलग-अलग बोलियाँ और संस्कृतियाँ हैं। वे अलग-अलग जातियों के हैं। अतः वैसा होना स्वाभाविक ही है। वे नाचने और गाने के बड़े शौकीन होते हैं। खुली हवा, स्वतंत्र व निश्चिन्त जीवन तथा प्राकृतिक भोजन के कारण उनका स्वास्थ्य अत्यन्त सुन्दर और शरीर पुष्ट होता है। उनके चेहरों पर सदा सुर्खी और स्वभाव में रंगीनी रहती है।

ईरान की सरकार अब कबीलों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दे रही है। उनके लिए इस तरह के चलते-फिरते स्कूल कायम कर दिये गये हैं जो उनके साथ-साथ गर्मियों में

ऊपर और सर्दियों में नीचे उतर आते हैं।

व्यापार

अत्यन्त प्राचीन काल से ईरान पूर्व और पश्चिम के बीच व्यापार का एकमात्र मार्ग रहा है। सन् १८६६ में स्वेज़ नहर के खुल जाने और सन् १८६१-१६०५ में प्रशान्त महासागर को बाल्टिक सागर से मिलानेवाली रेलवे लाईन के बन जाने से ईरान का वह अन्तर्राष्ट्रीय महत्व कम ज़रूर हो गया था, पर अब एक बार फिर, हवाई यातायात के अधिक प्रचलित हो जाने से, ईरान अपने प्राचीन महत्व को प्राप्त कर रहा है।

प्राचीन काल में चीन के रेशम का जितना भी व्यापार ग्रीस और दूसरे पश्चिमी देशों से होता था, वह ईरान के रास्ते होता था; अतः ईरान का प्राचीन काल में एक नाम 'रेशमी रस्ता' भी पड़ गया था।

ईरान के सामाजिक ढाँचे में व्यापारी की अत्यन्त महत्व-पूर्ण स्थिति है, विशेषतः उन व्यापारियों की जिनके हाथ में ईरान के बड़े-बड़े उद्योग हैं।

ईरान के सिक्के को रियल कहते हैं। क़रीब १० रियल का एक रुपया होता है। ईरान में बड़े-बड़े व्यापार जैसे अनाज, वस्त्र और तेल आदि सरकार के हाथ में हैं।

ईरान में कल-कारखाने अधिक नहीं हैं और पहाड़ी देश के कारण उनके शीघ्र विकसित होने की संभावना भी कम है। इसलिए बाहर के देशों के साथ उसका अधिकांश व्यापार इसी रूप में होता है कि ईरान से कच्चा माल बाहर जाता और तैयार माल अन्दर आता है। आयात-निर्यात की दृष्टि से ईरान की स्थिति मज़बूत नहीं है। नीचे की तालिका से उस स्थिति

का परिचय मिल जायेगा :

देश	वार्षिक आयात	वार्षिक निर्यात
रूस	७,२२,००,०००	६,८६,००,०००
पश्चिमी जर्मनी	८,८०,००,०००	१०,१२,००,०००
ब्रिटैन	५,७८,००,०००	२,५५,००,०००
भारत	५,२५,००,०००	१,७७,००,०००
अमरीका	१०,६६,००,०००	६,४१,००,०००
	कुल = ३७,७१,००,०००	२७,७४,००,०००

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि ईरान प्रति वर्ष निर्यात की अपेक्षा १० करोड़ रुपये की कीमत का माल अधिक आयात करता है। यह आर्थिक स्थिति किसी भी देश के लिए अच्छी नहीं कही जा सकती।

दस्तकार

'उस्ताद' शब्द फ़ारसी का है और अरबी भाषा में भी वहीं से आया है। आजकल तो इस शब्द का प्रयोग किसी भी अध्यापक या प्रोफ़ेसर के लिए हो सकता है, पर ईरान में इसका प्रयोग केवल उस व्यक्ति के लिए होता था जो किसी खास दस्तकारी में विशेष निपुणता रखता हो, जैसे गालीचा बुनना, मिट्टी के बरतनों पर चित्रकारी, सुनारगीरी आदि। आज भी ईरान में ऐसे 'उस्ताद' हैं जो किसी दस्तकारी में विशेष निपुण हैं, और यदि किसी को उस दस्तकारी की बारीकियाँ सीखनी हों तो उसके लिए उन उस्तादों का शिष्यत्व ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है।

केवल ईरान में ही नहीं, पूर्व के प्रायः सभी देशों में इस तरह के उस्तादों की विशेष प्रतिष्ठा रहती है। ये उस्ताद अपनी

कला को सावधानी से गुप्त रखते हैं और तब तक उसे किसी को नहीं सिखाते जब तक कोई उनकी सच्चे दिल से सेवा नहीं करता।

सन् १९११ की एक सरकारी गणना के अनुसार इस प्रकार के उस्तादों की संख्या ईरान में ३ लाख थी।

मौलवी

सन् १९०६ में ईरान का सबसे पहला विधान स्वीकार हुआ था। उस विधान के अनुसार ईरान का सरकारी धर्म शिया मत है और ईरान के शाह के लिए यह आवश्यक है कि वह केवल उस धर्म को माननेवाला बल्कि उसका रक्षक भी हो।

उपरोक्त विधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि देश में किसी भी कानून को बनाने के लिए आवश्यक होगा कि उच्च कोटि के पाँच मौलवियों की एक समिति अपना फ़तवा देकर उस कानून को शिया मत से सम्मत बताये। पर इस उल्लेख की क्रियात्मक रूप में अब कोई महत्ता नहीं रही। न अब पहले की-सी हालत ही है जब कि ईरान में शासन-व्यवस्था भी कुछेक मौलवियों के हाथ में रहती थी, और वे काज़ी कहलाते थे। पर अब भी इन मौलवियों का प्रभाव ईरान की जनता पर काफ़ी है और वे विशेष-विशेष अवसरों पर फ़तवे देकर जनता को अपनी सम्मतियों से प्रभावित करते रहते हैं।

शिया मत माननेवालों की कुल संख्या संसार में ३ करोड़ के लगभग है। हिन्दुस्तान के मुसलमानों में भी शिया काफी हैं। संसार के सभी शिया लोगों के पथ-प्रदर्शक और धर्म-गुरु अयातुल्ला बोरोदजार्ही ईरान ही के क़ुम शहर में रहते हैं। क़ुम ईरान में एक पवित्र स्थान माना जाता है, और मशहद से

उतरकर पवित्रता में इसी का दर्जा है। मशहद में शिया लोगों के आठवें इमाम हज़रत रज़ा की समाधि है और क़ुम में उनकी बहिन हज़रत फ़ातिमा की।

आजकल शिया मत के सिद्धान्तों की शिक्षा का मुख्य केन्द्र ईराक है। गत दो सौ सालों में ईरान के भी अनेक शिया विद्वान् और मौलवी ईराक के नजफ़ व कर्बला आदि स्थानों में जाकर बस गये हैं। ईरान व संसार के अन्य भागों से हज़ारों छात्र हर साल इन स्थानों में जाकर शिया मत की शिक्षा ग्रहण करते हैं और अपने-अपने स्थानों पर लौटकर धर्म के प्रचार में अपना जीवन बिताते हैं।

अब तेहरान विश्वविद्यालय में शिया मत की उचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कर दी गयी है; और एक निश्चित पाठ्य-क्रम को पूरा कर लेने के बाद विद्यार्थी को धर्म के विषय में बी० ए० की डिग्री दे दी जाती है। सन् १९५२ में ४७ छात्रों ने इस पाठ्य-क्रम को पूरा करके बी० ए० की डिग्री हासिल की थी।

स्त्रियाँ

इतिहासकार एक स्वर से इस बात को मानते हैं कि सातवीं शताब्दी से पहले तक, जब कि ईरान में इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ, ईरान में स्त्रियों की स्थिति ऊँची थी। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में तो ईरान के सिंहासन पर भी एक स्त्री आसीन थी, जिसका नाम होमा (सोमा ?) था। पर इस्लाम के आने के बाद ईरान की स्त्रियों को परदे में चले जाना पड़ा, वे शिक्षा से वंचित हो गयीं और उनकी उन्नति रुक गयी। ईरान की २ करोड़ आबादी में लगभग आधी स्त्रियाँ हैं। उनके पिछड़ जाने का

कुपरिणाम ईरान को भोगना पड़ा। शायद इसी का यह फल है कि मध्यपूर्व के, जिसे अब पश्चिमी एशिया भी कहते हैं, प्रायः सभी देश तथा ईरान सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश हैं। ईरान की सरकार का इस ओर अब ध्यान गया है और बीसवीं सदी की प्रगति की हवा उन्हें भी लगी है। सन् १९३७ में एक कानून के द्वारा स्त्रियों को इस बात का अधिकार मिल गया है कि वे परदे से बाहर आ सकें। प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा लड़कियों के लिए अनिवार्य कर दी गयी है। उन्हें दफ्तरों



बायें—शाह ईरान की इकलौती बेटी राजकुमारी शहनाज़
दाहिने—शाह ईरान की बहिन (राजमाता) शम्स पहलवी

में नौकरी करने या कोई दूसरा धंधा करने की भी आज़ादी है, वे सामाजिक संस्थाओं में भी भाग ले सकती हैं। शाह ईरान की बहिन शम्स पहलवी और शाह की एकमात्र कन्या शहनाज़ पहलवी सामाजिक संस्थाओं में विशेष रुचि लेती हैं। पर इन

सब किताबी कानूनों का कोई उल्लेखनीय फल नहीं निकला। वोट देने का अधिकार अब भी ईरान की स्त्रियों को नहीं है। सामाजिक स्वाधीनता का उपभोग भी केवल शाही घराने तथा कुछेक दूसरे उच्च कुलों की स्त्रियाँ ही करती हैं, आम जनता दकियानूसी ही है। ईरान के सामाजिक ढाँचे में यह एक बड़ा कमज़ोर पहलू है; उसकी कोई भी तसवीर आँखों के आगे खींची जाये तो इस पहलू को ओझल नहीं किया जा सकता।

अल्पसंख्यक जातियाँ

ईरान में बहुसंख्या, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शिया मुसलमानों की है। अल्पसंख्यक जातियाँ ईरान में चार हैं—पारसी, ईसाई, यहूदी और बहाई।

पारसी—पारसी भारत में भी काफ़ी संख्या में हैं। इनका धर्म ईरान का अत्यन्त प्राचीन धर्म है। सातवीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमणों के समय या तो ये लोग देश छोड़कर बाहर भाग गये या कुछ पारसी लोग देश के सुदूर भागों में दुबक गये। उन्होंने अपने धर्म को अक्षुण्ण और रक्त को अछूता रखा। अब ईरान में उन पर कोई प्रतिबंध नहीं है। पारसियों की संख्या ईरान में कुल दस हजार है। उनके अपने मन्दिर हैं जिनमें उनकी पवित्र अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है। वे आज भी अपने प्राचीन रीति-रिवाजों, प्रथाओं और प्रार्थना व पूजा के तरीकों पर मुस्तैद हैं।

पारसी स्वभाव से ईमानदार, विश्वसनीय और वफ़ादार होते हैं। हिन्दुस्तान के पारसी इस बात का प्रमाण हैं। उन्होंने भारत को सदा अपनी मातृभूमि समझा और देश की आज़ादी के संघर्षों से कभी अपने को अलग नहीं रखा। व्यापार की प्रवृत्ति

उनके स्वभाव में है, और वे जहाँ भी गये अपने को उत्तम व्यापारी प्रमाणित किया। बम्बई के पारसी तो प्रायः बड़े धनाढ्य व्यापारी हैं। हमारे देश की टाटा कम्पनी देश की शिरोमणि व्यापारिक कम्पनियों में है और यह पारसियों की है। हिन्दुस्तान के पारसी ईरान के पारसियों की अनेक प्रकार से मदद करते रहे हैं। उनके बनवाये हुए अनेक स्कूल और अस्पताल, जो ईरान में रहनेवाले पारसियों की सुविधा के लिए बनवाये गये हैं, तेहरान, यज़्द और किरमान में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं।

ईरान में रहनेवाले पारसियों की आपसी बोलचाल की भाषा फ़ारसी से भिन्न है। उसमें अरबी के शब्द अधिक हैं। वे अपनी प्राचीन पहलवी भाषा को भूल चुके हैं।

सन् १९०६ के विधान के अनुसार ईरान की मजलिस में एक प्रतिनिधि पारसियों का अवश्य रहता है।

ईसाई—ईरान के रहनेवाले ईसाई दो प्रकार के हैं। एक तो वे जो आर्मीनिया (रूस) से ईरान में आये थे और जो रक्त की दृष्टि से आर्य हैं। वे अब भी अपनी प्राचीन भाषा का व्यवहार करते हैं। सन् १६२९ में शाह अब्बास के आदेश पर उन्हें कृष्ण सागर के तटवर्ती प्रदेशों से हटकर इस्फ़हान में आकर बसना पड़ा था। उनका केन्द्रीय चर्च जो जोल्फ़ा (इस्फ़हान) में बना हुआ है, एक शानदार दर्शनीय इमारत है। इन ईसाइयों की कुल संख्या ईरान में ५० हज़ार है। वे अपनी वीरता, साहस और परिश्रम के लिए विशेष रूप से प्रख्यात हैं।

दूसरे प्रकार के ईसाई वे हैं जो रक्त की दृष्टि से सामी जाति (सेमिटिक रेस) के हैं। वे देश के सुदूर कोनों में अलग-अलग बिखरे हुए हैं, और उनकी संख्या का अभी तक भी पता

सब किताबी कानूनों का कोई उल्लेखनीय फल नहीं निकला। वोट देने का अधिकार अब भी ईरान की स्त्रियों को नहीं है। सामाजिक स्वाधीनता का उपभोग भी केवल शाही घराने तथा कुछेक दूसरे उच्च कुलों की स्त्रियाँ ही करती हैं, आम जनता दकियानूसी ही है। ईरान के सामाजिक ढाँचे में यह एक बड़ा कमज़ोर पहलू है; उसकी कोई भी तसवीर आँखों के आगे खींची जाये तो इस पहलू को ओझल नहीं किया जा सकता।

अल्पसंख्यक जातियाँ

ईरान में बहुसंख्या, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शिया मुसलमानों की है। अल्पसंख्यक जातियाँ ईरान में चार हैं—पारसी, ईसाई, यहूदी और बहाई।

पारसी—पारसी भारत में भी काफ़ी संख्या में हैं। इनका धर्म ईरान का अत्यन्त प्राचीन धर्म है। सातवीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमणों के समय या तो ये लोग देश छोड़कर बाहर भाग गये या कुछ पारसी लोग देश के सुदूर भागों में दुबक गये। उन्होंने अपने धर्म को अक्षुण्ण और रक्त को अछूता रखा। अब ईरान में उन पर कोई प्रतिबंध नहीं है। पारसियों की संख्या ईरान में कुल दस हजार है। उनके अपने मन्दिर हैं जिनमें उनकी पवित्र अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है। वे आज भी अपने प्राचीन रीति-रिवाजों, प्रथाओं और प्रार्थना व पूजा के तरीकों पर मुस्तैद हैं।

पारसी स्वभाव से ईमानदार, विश्वसनीय और वफ़ादार होते हैं। हिन्दुस्तान के पारसी इस बात का प्रमाण हैं। उन्होंने भारत को सदा अपनी मातृभूमि समझा और देश की आज़ादी के संघर्षों से कभी अपने को अलग नहीं रखा। व्यापार की प्रवृत्ति

उनके स्वभाव में है, और वे जहाँ भी गये अपने को उत्तम व्यापारी प्रमाणित किया। बम्बई के पारसी तो प्रायः बड़े धनाढ्य व्यापारी हैं। हमारे देश की टाटा कम्पनी देश की शिरोमणि व्यापारिक कम्पनियों में है और यह पारसियों की है। हिन्दुस्तान के पारसी ईरान के पारसियों की अनेक प्रकार से मदद करते रहे हैं। उनके बनवाये हुए अनेक स्कूल और अस्पताल, जो ईरान में रहनेवाले पारसियों की सुविधा के लिए बनवाये गये हैं, तेहरान, यज़्द और किरमान में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं।

ईरान में रहनेवाले पारसियों की आपसी बोलचाल की भाषा फ़ारसी से भिन्न है। उसमें अरबी के शब्द अधिक हैं। वे अपनी प्राचीन पहलवी भाषा को भूल चुके हैं।

सन् १९०६ के विधान के अनुसार ईरान की मजलिस में एक प्रतिनिधि पारसियों का अवश्य रहता है।

ईसाई—ईरान के रहनेवाले ईसाई दो प्रकार के हैं। एक तो वे जो आर्मीनिया (रूस) से ईरान में आये थे और जो रक्त की दृष्टि से आर्य हैं। वे अब भी अपनी प्राचीन भाषा का व्यवहार करते हैं। सन् १६२६ में शाह अब्बास के आदेश पर उन्हें कृष्ण सागर के तटवर्ती प्रदेशों से हटकर इस्फ़हान में आकर बसना पड़ा था। उनका केन्द्रीय चर्च जो जोल्फ़ा (इस्फ़हान) में बना हुआ है, एक शानदार दर्शनीय इमारत है। इन ईसाइयों की कुल संख्या ईरान में ५० हज़ार है। वे अपनी वीरता, साहस और परिश्रम के लिए विशेष रूप से प्रख्यात हैं।

दूसरे प्रकार के ईसाई वे हैं जो रक्त की दृष्टि से सामी जाति (सेमिटिक रेस) के हैं। वे देश के सुदूर कोनों में अलग-अलग बिखरे हुए हैं, और उनकी संख्या का अभी तक भी पता

नही लग सका है।

यहूदी—ईरान के यहूदी ईरान में अक्मीनियन राज्य-वंश (५५० ई० पू०) के दिनों में आये थे। तब से अब तक वे अपनी संस्कृति, धर्म, भाषा और प्रथाओं का कट्टरता से पालन करते आये हैं। उनकी कुल संख्या ईरान में ४१ हज़ार है। उनकी अधिकांश बस्तियाँ ईरान के दक्षिणी व मध्यवर्ती नगरों में है। यहूदी लोग अपने पैसा बचाने के गुण के लिए बड़े मशहूर हैं। इसलिए वे अक्सर सफल व्यापारी और धनाढ्य होते हैं। ईरान की व्यापारी दुनिया में भी उनकी विशेष स्थिति है। दुर्भाग्य से यहूदी लोग ईरान में विश्वास की दृष्टि से नहीं देखे जाते। उनके देश-प्रेम पर सन्देह किया जाता है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् इज़राईल की स्थापना के बाद अनेक यहूदी देश छोड़कर इज़राईल जा बसे थे। यहूदियों के तेहरान, हमेदान और इस्फ़हान आदि नगरों में अपने अलग स्कूल हैं और विश्व-व्यापी यहूदी प्रतिष्ठानों से उन्हें हर साल भारी मदद मिलती है।

ईरान की मजलिस (विधान सभा) में एक प्रतिनिधि यहूदियों का भी अवश्य रहता है।

बहाई अल्पसंख्यकों का वर्णन अलग से एक स्वतन्त्र अध्याय में किया जा रहा है।

श्रमिक

सन् १९३० के बाद से ईरान में उद्योग-धन्धों का काफ़ी विकास हुआ। अनेक कल-कारखाने अब ईरान में दृष्टिगोचर होने लगे हैं। उधर अबादान में तेल का भारी उद्योग है। इस सब का परिणाम यह है कि ईरान में श्रमिकों की संख्या अब दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। उनके अलग संगठन हैं और कानून

में भी उन्हें काफ़ी सुविधाएँ दी गयी हैं। प्रत्येक मिल मालिक के लिए यह आवश्यक कर दिया गया है कि वह अपने नीचे काम करनेवाले श्रमिकों का अनिवार्य रूप से बीमा करवा दे। श्रमिकों के काम के घंटे भी निश्चित कर दिये गये हैं। उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य पर मिल मालिक को आवश्यक रूप से खर्च करना पड़ता है। वह उनकी तनख़ाह के पैसे किसी भी सूरत में नहीं मार सकता।

शिक्षा-प्राप्त उच्च-वर्ग

ईरान में शिक्षा-प्राप्त उच्च-वर्ग का अपना अलग स्थान है। इसे ईरान का सम्भ्रान्त वर्ग (इंटेलिजेन्शिया) भी कह सकते हैं। तमाम सरकारी नौकर, वकील, डाक्टर, इंजीनियर, अध्यापक और पत्रकार इसी वर्ग में आ जाते हैं। नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से इस वर्ग के लोग शेष ईरानी जनता से श्रेष्ठ हैं, और उनके विचारों और कार्यों का प्रभाव उस जनता पर काफ़ी पड़ता रहता है। वस्तुतः यह वर्ग ही ईरान की प्राचीन संस्कृति का सच्चा वाहक है।

आर्थिक ढाँचा

ईरान मुख्यतया चरागाहों और खेती-बारी का देश है। दो करोड़ आबादीवाले इस देश में डेढ़ करोड़ भेड़ें हैं, जो ईरान की ऊन और गालीचा उद्योग की मुख्य आधार हैं। उन भेड़ों के लिए उत्तम चरागाहों का विकास आवश्यक है। भेड़ों के अतिरिक्त उन चरागाहों पर निर्भर करनेवाली अस्सी लाख बकरियाँ और चालीस लाख गाय-भैंसें हैं। बकरी के बालों से ईरानी लोग लम्बे-लम्बे चोगे और छोलदारियों का कपड़ा बुनते हैं। भेड़-बकरियों से निकलनेवाली ऊन और उस ऊन से बननेवाले गालीचों,

लम्बे चोग़ों व छोलदारियों के उद्योग में अधिकांश संख्या लड़कियों व स्त्रियों की है।

चरागाहें और खेती-बारी ईरान के आर्थिक ढाँचे का आधार हैं। दूसरे उद्योग व कल-कारखाने इनके मुकाबले में बहुत थोड़े हैं। उन उद्योगों पर निर्भर करनेवाले ईरानियों की संख्या ईरान की कुल आबादी का केवल सौवाँ हिस्सा अर्थात् दो लाख है। इन दो लाख में भी आधे से अधिक लोग अबादान के तेल उद्योग पर निर्भर हैं।

सारांश ईरान के आर्थिक ढाँचे को समझने के लिए ईरान की चरागाहों और खेती-बारी की एक साफ़ तसवीर आँखों के आगे होना ज़रूरी है।

ईरान एक कृषि-प्रधान देश है। पर इसका यह अभिप्राय हरगिज़ नहीं कि वहाँ खेती-बारी की दशा उन्नत है। इसके ठीक विपरीत ईरान दूसरे क्षेत्रों की भाँति खेती-बारी में भी एक पिछड़ा हुआ देश है। पुराने ढर्रे के हलों व बैलों को छोड़कर वहाँ का किसान और किसी चीज़ को नहीं जानता। पैदावार देश के क्षेत्रफल की तुलना में बहुत कम है। सिंचाई का प्रबन्ध भी शोचनीय है। यह और बात है कि आबादी घनी न होने और आधुनिक युग की हवा न लगने के कारण ईरान का किसान खुशहाल और अलमस्त है।

ईरान का कुल क्षेत्रफल साढ़े छत्तीस लाख वर्गमील है। इसमें आधे के करीब भूमि तो परती या रेगिस्तान हैं। कुल भूमि के दस प्रतिशत हिस्से ही पर खेती होती है। ईरान का किसान अपने खेतों का लगभग दो-तिहाई हिस्सा बारी-बारी से हर साल अनजोता और अनबोया (Fallow) छोड़ देता है। इसका परि-

णाम यह है कि उस दस प्रतिशत हिस्से में भी वास्तविक खेती तो लगभग तीन प्रतिशत हिस्से में होती है।

ईरान की चरागाहों ने कुल भूमि के १५ प्रतिशत हिस्से को घेर रखा है। १० या १५ प्रतिशत हिस्से में वहाँ के जंगलात हैं।

खेती की मुख्य समस्या

खेती-बारी में मुख्य समस्या सिंचाई की है। पहाड़ी देश होने से वहाँ नहरें नहीं हैं। खेत भी एक दूसरे से बहुत दूरी पर हैं। नदियाँ वहाँ ज़रूर हैं पर उन पर बाँध अभी नहीं बाँधे गये, और जो बाँधे भी गये हैं वे अपर्याप्त हैं।

अगर सिंचाई का प्रबन्ध ठीक ढंग से हो जाये तो कम-से-कम २० या ३० प्रतिशत परती भूमि पर और खेती हो सकती है और देश की पैदावार दुगुनी से भी अधिक हो सकती है।

अब तक सिंचाई जितने तरीकों से होती है वे मुख्यतया तीन हैं—नहरें, झलार और कनात।

नहरें, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ईरान में नहीं के बराबर हैं। पर जो थोड़े बहुत बाँध नदियों पर बाँधे गये हैं उनके सहारे कुछ हिस्सों की सिंचाई नहरों द्वारा हो जाती है। झलार को अंग्रेज़ी में 'पर्शियन व्हील' कहते हैं। भारत में भी इसका चलन काफ़ी है और वह निस्सन्देह इस देश पर ईरानी प्रभाव की देन है। झलारें, नदियों व नहरों के किनारे बनाये गये एक तरह के कुएँ होते हैं और उनका काम वहाँ से पानी खींचकर खेतों में पहुँचाना होता है। इन्हीं झलारों के अन्तर्गत वे साधारण ढंग के कुएँ भी आ जाते हैं जिनके भीतर से चमड़े की बड़ी-बड़ी मशकों द्वारा पानी खींचकर खेतों में पहुँचाया जाता

है। इन मशकों को बैल और कभी-कभी आदमी भी खींचते हैं। वास्तव में 'पर्शियन व्हील' इन्हीं कुओं का नाम है; झलार उसी का रूपान्तर है।

सिंचाई का सबसे बड़ा और अद्भुत तरीका तो ईरान में कनात का है। ऊँचे पहाड़ी दामन से गिरने और बहनेवाले जल को ईरानी लोग बड़े-बड़े तालाबों में जमा कर लेते हैं। इन तालाबों से ज़मीन के भीतर-ही-भीतर ३-४ फुट चौड़ी नालियाँ खोदी जाती हैं जो मीलों लम्बी होती हैं। अगर इन नालियों को ज़मीन के ऊपर खोदा जाये तो बाहर की गरमी से बहुत-सा जल भाप बनकर बेकार चला जाये। इन नालियों को ईरान में कनात कहते हैं। इन कनातों पर बीच-बीच में छेद कर दिये जाते हैं। उन छेदों द्वारा पानी खींचकर खेतों में पहुँचाया जाता है। एक-एक छेद पर पूरी-की-पूरी एक बस्ती बस जाती है।

सच यह है कि सिंचाई के उपरोक्त तीनों तरीकों के बावजूद सिंचाई अभी भी बड़ी अपर्याप्त है। अगर इस समस्या पर पूरी तरह ध्यान दिया जाये तो ईरान की आय व जनता का आर्थिक धरातल बहुत ऊँचा उठ जाये। उसका एक अवश्यम्भावी शुभ परिणाम उद्योग-धन्धों की वृद्धि होगा। अर्थशास्त्र का यह नियम है कि जब लोगों की जेबें गरम होती हैं तभी उन्हें सुख-सुविधा के सामान ख़रीदने की इच्छा होती है, और यह इच्छा ही कल-कारख़ानों की जननी है।

पैदावार बढ़ जाये तो उसे स्थान-स्थान पर पहुँचाने के लिए सड़कों और रेलों की ज़रूरत होगी, और यह ज़रूरत ही ईरान में यातायात के विकास का साधन बन जायेगी। सारांश, सिंचाई आज के ईरान की एक बड़ी महत्वपूर्ण समस्या है।

पैदावार

गेहूँ—गेहूँ ईरान में अनेक स्थानों पर बोया जाता है। खोरासान प्रान्त में मशहद इसका खास केन्द्र है। इसके अतिरिक्त जैगरोस पहाड़ियों के उत्तर-पश्चिमी और बीच के हिस्सों में भी यह बोया जाता है; उनमें उर्मिया झील के तटवर्ती प्रदेश, हमादान, कर्मनशाह, इस्फ़हान, शीराज़ और निरीज़ के नाम विशेष उल्लेख-नीय हैं। गेहूँ की कुल वार्षिक पैदावार साढ़े बाईस लाख टन है।

जौ— गेहूँ से उतरकर ईरान की बड़ी फ़सल जौ है। जिस स्थानों पर गेहूँ नहीं बोया जा सकता वहाँ जौ बोया जाता है। जौ की कुल पैदावार आठ लाख टन है।

चावल—चावल कैस्पियन सागर के तटवर्ती प्रदेश, मज़न्द-रान व गिलान आदि में बहुतायत से बोया जाता है। समूचे ईरान में बोये जानेवाले चावल का ८० प्रतिशत यहीं होता है। यद्यपि यहाँ वर्षा काफी होती है, फिर भी चावल के लिए अति-रिक्त सिंचाई का प्रबन्ध करना पड़ता है। चावल की कुल पैदा-वार ईरान में साढ़े चार लाख टन होती है।

चुकन्दर—चुकन्दर की खेती ईरान में चीनी व्यवसाय का आधार है। सैकड़ों साल पहले ईरान में गन्ना भी बोया जाता था, पर अब नहीं बोया जाता। चुकन्दर की कुल पैदावार ईरान में ३०-४० हज़ार टन है। यह ईरान की चीनी की कुल आवश्य-कता के एक तिहाई की पूर्ति करता है।

तमाखू—ईरान में हुक्के का बहुत रिवाज़ है। देश के अनेक भागों में तमाखू की खेती होती है, पर कैस्पियन सागर के तटवर्ती प्रदेश में यह सबसे अधिक होता है। तेहरान में सिगरेट का एक सरकारी कारखाना है, अधिकांश तमाखू का इस्तेमाल उसी में

ईरान में पैदा होनेवाले खास-खास फल अंगूर, संतरा, सेव, आड़, नाशपाती, अनार, अंजीर और खजूर हैं। सूखे मेवों में किशमिश और बादाम का नाम उल्लेखनीय है। फलों और सूखे मेवों का ईरान से काफ़ी निर्यात होता है और देश को उससे काफ़ी आमदनी होती है।

मुख्य-मुख्य फलों की वार्षिक पैदावार के आँकड़े निम्नलिखित हैं :

१. अंगूर	५३,५०,००० टन
२, खजूर	१,३२,००० टन
३. सन्तरा	७०,००० टन
४. आड़ू	५५,००० टन
५. किशमिश	४०,००० टन
६. बादाम	३५,००० टन

इसके अतिरिक्त ईरान में केसर भी बहुत होता है और उसके निर्यात से काफ़ी आय होती है।

पेट्रोल

पहले कहा जा चुका है कि ईरान खेती-बारी और चरागाहों का देश है। उसमें उद्योग-धन्धे नहीं के बराबर हैं। सबसे बड़ा उद्योग ईरान में पेट्रोल का है। इस अकेले उद्योग से होनेवाली आय देश की कुल आय का लगभग तीसरा हिस्सा है। ईरान के सभी उद्योगों में काम करनेवाले आदमियों की कुल संख्या क़रीब २ लाख है; उनमें से आधे के क़रीब अकेले पेट्रोल उद्योग में हैं।

ईरान में पेट्रोल उद्योग का इतिहास सन् १६०१ से शुरू होता है। सब से पहला व्यक्ति जिसने सन् १६०१ में ईरानी सरकार

से पेट्रोल खोजने तथा निकालने की इजाज़त हासिल की थी विलियम नॉक्स डी आर्सी था। उसका आज्ञापत्र ६० साल अर्थात् १९६१ तक के लिए था। पेट्रोल निकलने के कुछ ही साल बाद, सन् १९०९ में, डी आर्सी के आज्ञापात्र के आधार पर ब्रिटिश-पर्शियन आयल कम्पनी का सूत्रपात्र हुआ और पेट्रोल उद्योग को बहुत बड़े पैमाने पर लाने का निश्चय किया गया। इसी का नाम सन् १९३५ में एंग्लो-ईरानियन आयल कम्पनी पड़ गया, जो आज भी है। साथ ही, इस कम्पनी का आज्ञापत्र सन् १९६१ से बढ़ाकर सन् १९९३ कर दिया गया।

द्वितीय महायुद्ध के चार वर्षों (१९३८-४२) को छोड़कर, जब कि तेल ढोनेवाले जहाज़ सुलभ नहीं रह गये थे, ईरान के पेट्रोल का उत्पादन लगातार बढ़ती पर रहा है। सन १९४६ के बाद से तो जब कि मित्र-राष्ट्रों की युद्ध में विजय हो चुकी थी, यह उत्पादन उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। नीचे की तालिका से ईरान के पेट्रोल-उत्पादन के विकास का एक सही अन्दाज़ा लग जायेगा :

वार्षिक-उत्पादन

(टनों में)

१९४६	१९, १८९, ५५१
१९४७	२०, १९४, ८३६
१९४८	२४, ८७१, ०५८
१९४९	२६, ८०६, ५६४
१९५०	३१, ७५०, १४७

अबादान

पेट्रोल उद्योग के प्रसंग में अबादान की चर्चा आवश्यक है।

ईरान की खाड़ी से ३५ मील ऊपर अबादान पहले एक मामूली-सा गाँव था। सन् १६०६ में इसकी पहले-पहल किस्मत जागी जब कि एंग्लो-ईरानियन आयल कम्पनी द्वारा यहाँ पर तेल-शोधक कारखाने की नींव रखी गयी। आज तो अबादान संसार का सबसे बड़ा तेल-शोधक (रिफाइनरी) कारखाना है। तेल-शोधन के नये-से-नये तरीके यहाँ इस्तेमाल किये जाते हैं। ईराक, साउदी अरब व कुव्वैत आदि पश्चिमी एशिया के दूसरे देशों में जहाँ तेल-शोधन के कारखाने हैं, अबादान का अनुकरण किया जाता है। इतना ही नहीं, अबादान में तेल-उद्योग का प्रशिक्षण देनेवाली एक बड़ी संस्था भी कायम की गयी है जहाँ से प्रतिवर्ष निकलनेवाले सैकड़ों नवयुवक पश्चिमी एशिया के पेट्रोल-उत्पादक देशों में बड़े उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

ईरान के बड़े-बड़े तेल-कूप मस्जिद-ए-सुलेमान के इलाके में हैं, जो अबादान से १३० मील की दूरी पर उसके उत्तर-पूर्व में हैं। सन् १६२८ में मस्जिद-ए-सुलेमान से दक्षिण-पूर्व में ५५ मील नीचे एक और इलाका खोज निकाला गया, जिसका नाम हफ्त-कील है। अन्तिम तेल-कूपों की खोज द्वितीय महायुद्ध से पूर्व हफ्तकील से भी नीचे और अधिक दक्षिण-पूर्व में आगाजारी, पैजेनन और गचसारन आदि इलाकों में खत्म हुई। इन तेल-कूपों से कच्चा तेल अबादान तक पाइपों द्वारा, जो ज़मीन के नीचे बिछाये गये हैं, लाया जाता है।

अबादान की कुल आबादी १ लाख ३० हज़ार है। इनमें अधिक संख्या तेल-उद्योग पर निर्भर करनेवाली है। तेल-शोधक कारखाने में काम करनेवाले ६६ हज़ार आदमियों में ६० हज़ार ईरानी हैं और केवल ५ हजार विदेशी। अनेक ईरानी ऊँचे-ऊँचे



गादर लंधार: दक्खिणी ईरान का एक प्रमुख तेल-केन्द्र

पदों पर काम करते हैं। यह संख्या उन बीस हज़ार मज़दूरों के अतिरिक्त है जिन्हें ठेकेदार लोग हर साल भरती करते हैं। केवल अबादान ही में नहीं, तेल-उद्योग के सभी केन्द्रों में काम करने-वाले कर्मचारियों की संख्या यदि जोड़ी जाये तो वह १ लाख से भी ऊपर जा पहुँचती है।

अबादान में अब अच्छी सड़कें, साफ़-सुथरे मकान, दूकानें, क्लब, और बाग़-बगीचे देखने को मिलते हैं। बिजली और पानी का पूरा इन्तज़ाम है। कम्पनी की ओर से स्कूल और अस्पताल भी हैं।

अबादान को यदि ईरान के आर्थिक ढाँचे की रीढ़ कहें तो अत्युक्ति न होगी। कोई भी दूसरा स्थान अपने-आपमें अकेला अबादान की तरह ईरान की परवरिश नहीं करता।

५. ईरानी राष्ट्रीयता के पाँच आधार

ईरान में राष्ट्रीयता के आधार किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा अधिक ठोस हैं। जिस प्रकार भारत में अनेक जातियाँ, अनेक भाषाएँ, वेष-भूषा, प्रथाएँ और धर्म हैं वैसी बात ईरान में नहीं है। न पाकिस्तान की-सी भौगोलिक विषमता ही ईरान में है कि जहाँ देश के दो भाग सैकड़ों मील की दूरी पर अलग-अलग बसे हों। राष्ट्रीयता के आधार किसी देश में जितने ही अधिक ठोस होंगे उतने ही अधिक उस देश के निवासी देशभक्ति व एकता के भावों में भीगे होंगे। यही कारण है कि प्रत्येक ईरानी चाहे वह अमीर हो या गरीब सहानुभूति की गहन भावना से एक-दूसरे के प्रति ओत-प्रोत होता है। उसके स्वभाव और यहाँ तक कि चेहरे-मोहरे में भी एक समानता देखी जा सकती है। नीचे हम उन ठोस आधारों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे जिनसे ईरान की राष्ट्रीयता का निर्माण हुआ है।

नसल—ईरानी, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आर्य नसल के हैं। अपने विगत ढाई हज़ार साल के इतिहास में यद्यपि अनेक विदेशी जातियों ने उन पर आक्रमण किया—यूनानी, अरब, तूरानी और मंगोल—पर वे उनकी नसल को न बिगाड़ सकीं। हमलावर जातियाँ सागर में वर्षा की बूँदों की तरह तनिक तूफ़ान मचाकर बिला गयीं। इसका परिणाम यह है कि

ईरानियों के चेहरे-मोहरे में आसानी से समानता देखी जा सकती है। भारत में एक पंजाबी की शक्ल-सूरत बंगाली से भिन्न होती है; रूस में स्लाव और उज़्बेक आपस में नहीं मिलते; स्विट्ज़रलैंड में उत्तरी भाग में बसनेवाले जर्मनों और दक्षिणी भाग में बसनेवाले लैटिन लोगों में स्पष्ट भेद देखा जा सकता है। पर ईरान में यह बात नहीं है।

ईरानियों का रंग अक्सर गोरा होता है। बाल काले होते हैं। नाक लम्बी और कद मझौला होता है। ईरान देश का नामकरण ही, जैसा कि इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में कहा जा चुका है, आर्य शब्द से हुआ है। यद्यपि ईरान में सामी नसल व कुछ दूसरी नसलों के लोग भी रहते हैं पर उनकी संख्या नगण्य है। ९५ प्रतिशत ईरानी आर्य नसल के हैं।

लिपि और बोली—ईरान में एक बोली और एक लिपि है। फ़ारसी ईरान की प्राचीन पहलवी बोली ही का रूपांतर है। पहलवी और संस्कृत, दोनों बोलियाँ प्राचीन आर्यों की थीं, एक का प्रचार ईरान और दूसरी का भारत में हुआ। यही कारण है कि फ़ारसी और संस्कृत में न केवल शब्दों की बल्कि व्याकरण की भी अद्भुत समानता है। सातवीं शताब्दी में सामी जातियों (अरब के मुसलमानों) ने ईरान पर जब अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया तब उनका सबसे अधिक प्रभाव ईरान की भाषा (लिपि और बोली) पर पड़ा। पहलवी भाषा में अनेक शब्द अरबी के आ गये। इतना ही नहीं, उसकी लिपि भी अरबी लिपि से मिलती-जुलती हो गयी। पर पिछले एक हज़ार वर्ष से फ़ारसी बोली और फ़ारसी लिपि का रूप अक्षुण्ण है; और फ़ारसी को अक्षुण्ण रूप देने का अधिकांश श्रेय दसवीं शताब्दी

के लेखकों व कवियों–फ़िरदौसी, हाफ़िज़, उमर खय्याम और जलालुद्दीन रूमी–को है। आज जो फ़ारसी ईरान के शहरों व गाँवों में बोली जाती है और जो लिपि लिखी जाती है, उसका आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व की बोली और लिपि से बहुत ही कम फ़र्क है।

धर्म—ईरान की २ करोड़ आबादी में ९९ प्रतिशत मुसलमान हैं। मुसलमानों में मुख्यतया दो मत होते हैं–सुन्नी और शिया। ईरान के ९५ प्रतिशत मुसलमान शिया हैं। शिया मत की स्थापना सन् १५०० में ईरान के शाह इस्माईल ने की थी। उसने सारे देश को शिया मत का अनुयायी बना दिया। शिया मत ईरान का राज-धर्म बन गया। जिन्होंने उस धर्म को मानने से इनकार किया उन्हें देश छोड़ना पड़ा। अरब के मुसलमान, जिन्होंने ईरान में इस्लाम को फैलाया, सुन्नी हैं।

शिया मत का दृष्टिकोण सुन्नी मत की अपेक्षा अधिक क्रियात्मक है, इसी लिए वह ईरानियों के स्वभाव से, जो वास्तव में आर्य जाति के हैं, अधिक मेल खाता है। सारे ईरान में शिया मत को अपना लेने का शायद यही कारण हो। बहुत काल तक तो ईरान शिया मत को अपना लेने के कारण शेष मुस्लिम संसार से कटा रहा।

ईरानी लोगों के स्वभाव में प्रायः एक आध्यात्मिक रहस्य का पुट रहता है। वे सन्देहवादी और व्यक्तिवादी होते हैं। जीवन के प्रति उनका अपना एक अलग दृष्टिकोण होता है।

संस्कृति—ईरान की संस्कृति उदार है। संस्कृति किसी देश के वासियों के स्वभावगत संस्कारों ही का दूसरा नाम है। यद्यपि ईरान का राज-धर्म इस्लाम है, फिर भी उसका राष्ट्रीय

त्यौहार नौरोज़, जो प्रति २१ मार्च को मनाया जाता है, वास्तव में ज़रथुस्त्र धर्म (पारसी धर्म) का त्यौहार है। उस दिन सूर्य मेष राशि में प्रविष्ट होता है। यह त्यौहार पहले-पहल जमशेद ने चलाया था। होली की तरह, जो भारत में नौरोज़ से कुछ पहले मनाई जाती है, नौरोज़ के त्यौहार पर भी लोग एक-दूसरे पर रंग डालते हैं और खुशियाँ मनाते हैं।



प्राचीन ईरान के शाही दरबार में एक विदेशी राजदूत अपने उपहार के साथ

ईरान के प्राचीन साहित्य का अनुशीलन करने से पता चलता है कि प्राचीन ईरानी आर्य अपने बच्चों की शिक्षा में तीन बातों पर खास ज़ोर देते थे--घुड़सवारी, धनुर्विद्या और सत्य-भाषण। आज भी ईरान की संस्कृति में न्याय-प्रियता, सत्य, ईमानदारी आदि गुणों का विशेष स्थान है; छल-कपट को बहुत बुरी दृष्टि से देखा जाता है। ईरानी लोग स्वभाव से शिष्टाचार-प्रिय, मेहमान-नवाज़ और उदार होते हैं।

देशभक्ति ईरानी संस्कृति का विशेष गुण है। शायद इसका कारण यह है कि हर ईरानी के दिल में अपने बादशाह के प्रति पूज्य बुद्धि रहती है। प्राचीन भारतीयों की भाँति ईरानी लोग आज भी अपने बादशाह को ईश्वर का अंश मानते हैं।

ईरानी संस्कृति के आधुनिक रूप-रंग में फ़िरदौसी के शाह-

नामा, सादी के गुलिस्तान, जलालुद्दीन रूमी की मसनवी ग्रौर उमर खय्याम की रुबाइयों का बहुत बड़ा हाथ है। किसी भी ईरानी से किसी विषय पर बातचीत कीजिए उसकी ज़बान पर घूम-फिरकर ये लेखक ग्रा जायेंगे। इन लेखकों की शिक्षाग्रों व दृष्टिकोणों ने ईरान की वर्तमान संस्कृति को बहुत ग्रधिक प्रभावित किया है।

ग्रतीत का ग्रभिमान—ईरान की राष्ट्रीयता का एक बहुत बड़ा ग्राधार यह है कि हर ईरानी को ग्रपने ग्रतीत पर ग्रभिमान है। इस ग्रभिमान में उनके धर्म ने भी कोई रुकावट नहीं डाली। साहर ग्रौर जमशेद के पराक्रम तथा नौशेरवाँ के इन्साफ़ को गाथाएँ घर-घर में प्रचलित हैं, ग्रौर ये राजा मुसलमान न थे। हर ईरानी को ग्रपनी भाषा की मिठास, साहित्य के उत्कर्ष ग्रौर दर्शन-शास्त्र व कविता की बुलन्दी पर नाज़ है।

६. साहित्य

मुग़ल शासन के समय फ़ारसी भाषा और साहित्य की इस देश में उतनी ही प्रतिष्ठा थी जितनी कि ब्रिटिश शासन-काल में अंग्रेज़ी की। कोई भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति उन दिनों फ़ारसी भाषा और फ़ारसी साहित्य से एकदम अपरिचित हो यह संभव नहीं था।

फ़ारसी भाषा में केवल ईरानी साहित्य ही नहीं भारतीय साहित्य भी प्रचुर मात्रा में है। अनेक संस्कृत ग्रन्थों, जैसे महाभारत और पंचतंत्र आदि का फ़ारसी में सुन्दर अनुवाद हुआ है। अतः ईरान का अध्ययन एक भारतीय विद्यार्थी के लिए तब तक पूरा नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह फ़ारसी साहित्य से कुछ परिचय न प्राप्त कर ले।

फ़ारसी साहित्य के इतिहास को मुख्यतया तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

प्रथम काल—इस्लाम के उदय से पूर्व का इतिहास (पाँचवीं सदी ई० पू० से ईसा की सातवीं सदी तक ११०० साल)

द्वितीय काल—इस्लाम के उदय से आधुनिक काल से पूर्व तक (आठवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी तक ११०० साल)

आधुनिक काल—१८२८ से अब तक (लगभग २५०

माल) । यह युग अभी चल रहा है ।

फ़ारसी साहित्य के लगभग ढाई हज़ार वर्षों के इतिहास पर कुछ कहने से पूर्व दो बातें शुरू में जान लेनी आवश्यक हैं । पहली तो यह कि फ़ारसी भाषा का आज जो रूप हम देखते हैं वह विशुद्ध ईरान का न होकर ईरान और अरब का मिश्रण है । पहले कहा जा चुका है कि अरब के मुसलमानों का आक्रमण होने से पूर्व ईरान में पहलवी भाषा प्रचलित थी । उस पर अरबी भाषा का न केवल अत्यधिक प्रभाव पड़ा, बल्कि पहलवी और अरबी भाषाएँ घुल-मिलकर एक हो गयीं; और जिस प्रकार एंग्लो-सैक्सन भाषाओं के मेल से अंग्रेज़ी भाषा का उदय हुआ उसी प्रकार पहलवी और अरबी भाषाओं के मेल से फ़ारसी भाषा का वर्तमान रूप बना । उसमें अरबी भाषा की गम्भीरता और पहलवी भाषा की मिठास दोनों हैं । पहलवी भाषा के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य, जिसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है सदा ध्यान में रखना चाहिए । वह यह कि पहलवी भाषा ईरान के प्राचीन आर्यों की भाषा थी । और उन दिनों भारत के आर्यों की भाषा संस्कृत थी; और इसी से पहलवी और संस्कृत में अत्यधिक समानता है ।

प्राणी[illegible] का नियम है कि एक ही नसल की दो विभिन्न किस्मों की [illegible] लगाने से उत्तम फल होता है । यह नियम फलों, वनस्पतिय[illegible] मनुष्य आदि प्राणियों पर तो लागू होता ही है, भाषाओं [illegible] उतना ही लागू होता है । संसार की बड़ी-बड़ी जी[illegible]ओं के इतिहास को देखें तो पता चलेगा कि वे इस [illegible] कितनी लाभान्वित हुई हैं । फ़ारसी भी उन्हीं में से [illegible] इसका साहित्य संसार के किसी भी दूसरे

साहित्य की तुलना में विश्व-साहित्य में रखा जा सकता है।

फ़ारसी साहित्य के सम्बन्ध में दूसरी बात ध्यान में रखने की यह है कि उसकी सबसे अधिक उन्नति दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में हुई।

प्रथम काल

कला और सौन्दर्य से प्रेम प्राचीन आर्यों का स्वाभाविक गुण था। इसी लिए क्या ईरान में और क्या भारत में दोनों जगह साहित्य पहले-पहल कविता का रूप लेकर आया। भारतीय आर्यों का सर्व प्रथम ग्रन्थ—वेद—कविता में है, इसी प्रकार ईरानी आर्यों का सर्व प्रथम ग्रन्थ अवस्ता भी कविता में है। अवस्ता की भाषा पहलवी है।

अवस्ता मुख्यतया तीन भागों में बँटा है—यास्ना, याश्त और वेंडीदाद। प्रथम भाग में उपासनाएँ और प्रार्थनाएँ हैं। द्वितीय में गाथाएँ व उपदेश हैं और तृतीय भाग में कर्मकांड अर्थात् विधि-विधान हैं। इन तीनों भागों की आश्चर्यजनक समता वेद-त्रयी अर्थात् ऋगवेद, सामवेद और अथर्ववेद से की जा सकती है। इतना ही नहीं, अवस्ता और वेदत्रयी में जिन देवताओं का उल्लेख है वे भी आपस में बहुत मिलते-जुलते हैं।

अवस्ता आज अपने एक चौथाई भाग ही में उपलब्ध है। उसका तीन चौथाई भाग महाकाल के उदर में समा चुका है। विद्वानों का विश्वास है कि अवस्ता आज यदि पूरा उपलब्ध होता तो उससे ईरान और भारत के प्राचीन मधुर सम्बन्धों को फिर से एकता की लड़ी में पिरोने में बड़ी सहायता मिलती। इसका एक चौथाई भाग भी महाकाल के उदर में समा जाता यदि यूरोप के एक विद्वान् ने उसका उद्धार न किया होता।

यह विद्वान् एक फ्रांसीसी था और उसका नाम था एनकीहील डू पैरू। पैरू ने सन् १७७१ में पहले-पहल इस ग्रन्थ-रत्न को खोज निकाला और उसका फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद करके पश्चिम के मनीषियों का उस ओर ध्यान आकृष्ट किया।

पहलवी भाषा के भी वस्तुतः दो रूप माने जाते हैं–प्राचीन पहलवी और पहलवी। अवस्ता प्राचीन पहलवी में है। प्राचीन पहलवी में अवस्ता को छोड़कर और कोई उल्लेखनीय साहित्य नहीं है। हाँ, कुछ शिलालेख पाँचवीं शताब्दी ई० पू० के अवश्य उपलब्ध होते हैं जिनसे उस समय के गद्य का कुछ आभास मिलता है। ये शिलालेख दारा-ए-आज़म के खुदवाये हुए हैं।

प्राचीन पहलवी के बाद जिस पहलवी भाषा का प्रचार ईरान में हुआ उसका काल २५० ई० पू० से लेकर ६४० ईसवी तक माना जाता है। इन ९०० वर्षों में ईरान पर पर्थियन और सासानियन वंशों का राज्य रहा। इस काल में पहलवी का साहित्य अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच गया।

सन् ६४० में अरब-आक्रमण के बाद पहलवी भाषा और साहित्य को ईरान के कुछ सुदूर, अज्ञात प्रदेशों में दुबक जाना पड़ा। पर साहित्य की ज्योति इस तरह दुबककर कब तक जलती रह सकती है? ईसा की सातवीं और आठवीं शताब्दियों में ज़रथुस्त्र धर्म को माननेवालों की एक भारी संख्या, जिनमें पहलवी के अनेक विद्वान् थे, भारत आ गयी और यहीं बस गयी। इन्हीं लोगों को आज हम 'पारसी' कहते हैं। इनमें आज भी अनेक विद्वान् पहलवी भाषा के हैं, और अनेक पारसी धनाढ्यों की सहायता से पहलवी का साहित्य आज भी सुरक्षित है।

पहलवी के साहित्य में उल्लेखनीय ग्रंथ का नाम 'जैन्द'

है। यह प्राचीन पहलवी के 'अवस्ता' का पहलवी में अनुवाद है। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ और भी उपलब्ध हैं जिनमें ईरान का प्राचीन धर्म, इतिहास, गाथाएँ और परम्पराएँ हैं।

पहलवी साहित्य के उद्धार का श्रेय भी प्राचीन पहलवी के साहित्य की भाँति, पश्चिम के विद्वानों को है। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू से यूरोप के, विशेषतया जर्मनी के, अनेक विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। उनमें प्रोफेसर थियोडोर नॉल्डेक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने पहलवी साहित्य को प्रकाश में लाने में घोर परिश्रम किया और उसकी रचनाएँ इस सम्बन्ध में प्रामाणिक मानी जाती हैं।

पहलवी में संस्कृत साहित्य

ऊपर कहा जा चुका है कि पहलवी साहित्य के अनेक विद्वान् ईसा की सातवीं और आठवीं शताब्दियों में भारत आकर बस गये थे और पहलवी का पर्याप्त साहित्य अपने साथ भारत ले आये थे। उधर ईरान में भी उन्हीं दिनों पहलवी के अनेक ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद शुरू हो गया। इन अनुवादों में संस्कृत के पंचतंत्र का, जिसका पहलवी में अनुवाद पहले ही हो चुका था, सन् ७६० में इब्न उल मुक्कफ़ा ने पहलवी से अरबी में अनुवाद किया। पंचतंत्र का संस्कृत से पहलवी में अनुवाद करनेवाले ईरान के एक हकीम थे जिनका नाम बुर्ज़ुआ था।

शाहनामा का पहलवी से सम्बन्ध

अनुवादकों में दो नाम और भी उल्लेखनीय हैं। अत-तबरी और फ़िरदौसी। अत-तबरी ने सन् ९२३ में पहलवी के दो प्रसिद्ध ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया। इनमें से एक ग्रन्थ ऐतिहासिक है और दूसरा धार्मिक।

फ़िरदौसी को यद्यपि अनुवादक कहना गलती है, पर उसके 'शाहनामा' का, जो आधुनिक फ़ारसी भाषा में लिखा गया है, मुख्य आधार पहलवी का ख्वात-ए-नामा ही है जो आजकल नहीं मिलता। 'शाहनामा' में ख्वात-ए-नामा के अतिरिक्त अन्य भी अनेक पहलवी ग्रन्थों का निचोड़ है। शाहनामा वर्तमान काल में ईरान के प्राचीन इतिहास व गाथाओं का सबसे बड़ा और प्रामाणिक ग्रन्थ है।

द्वितीय काल

सन् ६४० अर्थात् सातवीं शताब्दी के मध्य में ईरान पर अरब की सामी जातियों का आक्रमण हुआ। राजनीतिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। आर्य और सामी जातियों के मिश्रण से ईरान में एक नयी जाति का उदय हुआ। साहित्यिक दृष्टि से भी यह घटना कम महत्वपूर्ण न थी। अरबी और पहलवी भाषाओं के मेल से एक नयी भाषा—वर्तमान फ़ारसी का जन्म हुआ, और साहित्य में भी दोनों ओर के सौन्दर्य से एक नयी छटा छिटक गयी।

पर उपर्युक्त मिश्रण की प्रक्रिया एक दिन में पूरी नहीं हुई; उसे तीन शताब्दियाँ लग गयीं। इस काल की पहली तीन शताब्दियों में साहित्य का आकाश अन्धकार से आच्छन्न रहा। पर वह अन्धकार एक महान् प्रकाश को अपनी कोख में छुपाये हुए था। वह प्रकाश ग्यारहवीं शताब्दी में फूटा और ३०० साल के अरसे में वह न केवल ईरान के आकाश पर पूरी तरह छा गया, बल्कि आस-पास के देशों की, जिनमें भारत भी है, आँखें चौंधिया गयीं। इन ३०० सालों में (ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी) ही फ़िरदौसी, शेखसादी, उमर खय्याम व जामी जैसे

महान् कलाकारों ने ईरान में जन्म लिया। इनका स्थान ईरानी साहित्य में वही है जो अंग्रेजी में बेकन, शैक्सपीयर और स्पेंसर का है। जैसे एलिज़ाबेथ के युग के इन कलाकारों ने अपनी ओजस्वी लेखनी के द्वारा अंग्रेजी भाषा को एक स्थायी रूप प्रदान किया उसी प्रकार बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के ईरानी कलाकारों ने फ़ारसी की हमेशा के लिए मज़बूत नींव रख दी। इसी काल में भारत में अमीर खुसरो हुआ जिसने एक ओर फ़ारसी में और दूसरी ओर हिन्दी में कविता की।

ईरान में फ़ारसी के उदय का श्रीगणेश ईरान की पूर्व दिशा से हुआ। बहुत देर तक सीस्तान और खुरासान ही फ़ारसी के गढ़ बने रहे। पूर्व से पश्चिम की ओर फ़ारसी की अपेक्षा अरबी का अधिक बोल-बाला रहा। पर शीघ्र ही फ़ारसी चारों दिशाओं में छा गयी। नीचे हम इस काल के चार प्रतिनिधि कवियों का परिचय देते हैं जिन्होंने पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में फ़ारसी की ज्योति प्रज्वलित की।

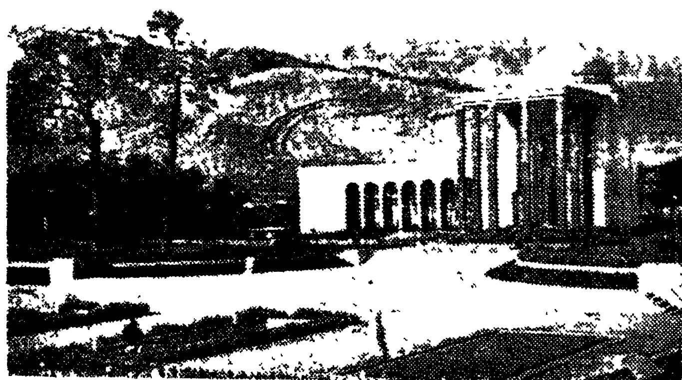
पूर्व में अमीर खुसरो—इसका जन्म पटियाला में और मृत्यु दिल्ली में हुई। यह सत्रहवीं शताब्दी के शुरू का कवि है। कुल्लियात और खामसा इसकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। फ़ारसी के अलवा इसका नाम भारत के आदिकाल के कवियों में भी गिनाया जाता है।

पश्चिम में जलालुद्दीन रूमी—कुनियेह (एशिया माइनर) में सन् १२७३ में इसकी मृत्यु हुई। इसको 'मसनवी' रहस्यवाद और अध्यात्म की एक अमर रचना है।

उत्तर में निज़ामी—इसका जन्म गांजा (कार्केशिया) में हुआ और वहीं इसकी मृत्यु हुई। इसकी पाँच मसनवियों और

खामसा का रहस्यवाद, नीति व ईरानी गाथाओं के साहित्य में बड़ा ऊँचा स्थान है।

दक्षिण में शेखसादी—शीराज़ का यह कवि ईरान के साहित्याकाश में खूब चमका और इसकी चमक अब तक फ़ारसी के प्रेमियों को चमत्कृत करती है। यह भारत भी आया था। सन् १२९१ में शीराज़ में इसकी मृत्यु हुई। गुलिस्ताँ और बोस्ताँ इसकी दो अमर रचनाएँ हैं जिनका भारत में भी व्यापक प्रचार है और उनका हिन्दी में अनुवाद भी हो चुका है।



शीराज़ में शेखसादी की आरामगाह

उपर्युक्त चार कवि ईरान की चार दिशाओं के प्रतिनिधि कवियों के रूप में बताये गये हैं।

फ़िरदौसी, उमर ख़य्याम और जामी

इनके अतिरिक्त फ़िरदौसी, उमर ख़य्याम और जामी इन तीन महान् कवियों के उल्लेख के बिना यह प्रसंग अधूरा रहेगा। फ़िरदौसी के 'शाहनामा' को विश्व-साहित्य की चुनी हुई कृतियों

में रखा जा सकता है। विद्वान् लोग इसकी गिनती इलियड और महाभारत जैसी रचनाओं के साथ करते हैं।

फ़िरदौसी को अपनी रचना पर स्वयं कितना नाज़ था, इसका आभास उसकी निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट मिल सकता है—'मैंने शब्दों से स्वर्ग की सृष्टि की है। मुझसे पहले किसी ने भावनाओं के ऐसे बीज नहीं रोपे। अतीत की कितनी ही शानदार इमारतें धूप और वर्षा के थपेड़ों के आगे टिक नहीं सकीं। मैंने एक ऐसा ऊँचा प्रासाद खड़ा किया है जिस पर महाकाल के तूफानी थपेड़ों का कोई असर नहीं है। मेरी रचना अमर है, अतः मैं भी अमर हूँ। मेरे पीछे की पीढ़ियों में आनेवाला कोई भी व्यक्ति जिसमें प्रतिभा, परख और सहृदयता है, मेरी रचना की प्रशंसा किये बिना न रहेगा।

उमर ख़य्याम—उमर ख़य्याम ईरान का एक बहुत बड़ा कवि, दार्शनिक और गणितज्ञ था। उसकी रुबाइयों का संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी ही में उसके कई अनुवाद हो चुके हैं। उसकी रचना में संसार की क्षणभंगुरता और मनुष्य की असमर्थता का एक ऐसा राग है जो पाठक के मन में निराशा का भाव भर देता है। धर्म-अधर्म और पाप-पुण्य की भावनाओं को ख़य्याम ने सारहीन चित्रित किया है। दूसरे शब्दों में जीवन के थोड़े से अमूल्य क्षणों का मूल्य केवल यही बताया गया है कि मनुष्य जितने दिन जिये, संसार के सुख-भोग मदिरा और ऐश्वर्य का पूर्ण आनन्द ले।

ख़य्याम का जीवन-दर्शन कैसा भी हो, इतना निस्सन्देह है कि उसने न केवल ईरान के बल्कि भारत के भी मानसिक धरातल को बहुत देर तक आलोड़ित किये रखा। हिन्दी के प्रसिद्ध

कवि बच्चन तो ख़य्याम से बहुत ही प्रभावित हुए हैं।

उमर ख़य्याम को पहले-पहल प्रकाश में लाने का श्रेय श्री फ़िट्ज़गैरेल्ड को है। उसी ने शुरू-शुरू में उमर ख़य्याम की रुबाइयों का फ़ारसी से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। उस अंग्रेज़ी अनुवाद से ख़य्याम की इतनी धूम हुई कि संसार की अनेक भाषाओं में उसका अनुवाद हो गया। हिन्दी के अनुवाद भी उसी अंग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित हैं।

अब्दुर रहमान जामी—जामी के काव्य में रहस्यवाद और इस्लाम के सिद्धान्तों का अद्भुत मिश्रण है। उसकी महान् रचना 'सप्तत' में ७ सुन्दर मसनवियाँ हैं। उनमें से एक मसनवी में हिन्दुस्तान के ब्राह्मणों और सिकन्दर महान् के बीच हुआ संवाद है जो पठनीय है। जामी उस मसनवी में लिखता है:

'जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया तब उसने भारतीय ब्राह्मणों की ज्ञान-गरिमा की बड़ी प्रशंसा सुनी। उसे बताया गया कि वे बड़े ऊँचे चरित्रवाले होते हैं, और उन्होंने सांसारिक आशाओं व आकांक्षाओं तथा मृत्यु के भय पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है।

'सिकन्दर से एक भी ब्राह्मण अपनी कुटिया छोड़कर भेंट करने नहीं आया। इस बात से वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने अपनी सेना इकट्ठी की और उनकी बस्ती की तरफ़ चल दिया।

'ब्राह्मणों ने समाचार सुनकर आपस में मंत्रणा की। उन्होंने उससे कहा—हे सिकन्दर, ज्ञान और स्वाध्याय ही हमारा एक-मात्र धन है, तुम हमें लूटकर क्या ले जाओगे? यदि तुम्हें उस धन की आवश्यकता है तब वह तुम्हें सेवा और परिश्रम से प्राप्त हो सकेगा। आक्रमण और अत्याचार से नहीं।

'सिकन्दर उनकी बात सुनकर शर्मिन्दा हो गया। वह अपने धन-वैभव को पीछे छोड़कर अकेला विनयपूर्वक उनका अनुसरण करने लगा।

'अनेक रेतीले मैदानों को पार करने के बाद वह ऐसी जगह पहुँचा जहाँ अनेक पहाड़ी गुफ़ाएँ थीं। उन कन्दराओं में कुछेक योगी समाधि में लीन थे। उन्होंने वल्कल वस्त्र पहने हुए थे।



शीराज़ में हाफ़िज़ की आरामगाह

'सिकन्दर ने अपने अनेक प्रश्नों का उन योगियों से समाधान किया। विदा होने से पूर्व वह बोला—हे महात्माओ, तुम जो चाहो मुझसे माँग लो। योगियों ने कहा—हे सिकन्दर, हम तो अमर जीवन के अभिलाषी हैं; वही तुम हमें कहीं से ला दो। सिकन्दर बोला—वह तो मेरी शक्ति से बाहर की बात है। मैं तो स्वयं उससे वंचित हूँ। तब योगियों ने कहा—हे सिकन्दर, यदि तुम इस बात को समझते हो तब क्यों लोभ और वासना के दास बने घूमते हो? तुम कब तक अपनी राज्य-लिप्सा

में इस तरह खून की नदियाँ बहाते रहोगे ? कल्पना कर लो—सारे संसार पर तुमने विजय प्राप्त कर ली है, फिर क्या होगा ? तुम भी एक दिन उस संसार को छोड़कर चल दोगे; और उस दिन तुम्हारे हृदय में निराशा और दुःख के अतिरिक्त और कुछ न होगा।'

जामी के अतिरिक्त इस धारा के तीन अन्य कवियों के नामों का उल्लेख करके हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। वे हैं—जलालुद्दीन रूमी, निज़ामी और हाफ़िज़।

ईरान के उपर्युक्त सभी कवियों में एक समानता है। वह है संसार से विरक्ति की एक तीव्र भावना। उमर ख़य्याम तक में इस भावना की छाया उसकी मदिरा और प्रेयसी के आस-पास मँडराती देखी जा सकती है। वास्तव में यही छाया ईरान के सूफ़ीवाद का आधार है।

द्वितीय काल के दो उपविभाग

द्वितीय काल को हम दो छोटे भागों में बाँट सकते हैं। पहला भाग है ६०० वर्ष का, आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक। दूसरा भाग है ५०० वर्ष का, चौदहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी तक। इन दो छोटे भागों को अलग बाँटनेवाली बीच की रेखा है मंगोलों के आक्रमण जो तेरहवीं शताब्दी के मध्य में ईरान में शुरू हो गये थे।

मंगोल आक्रमणों के बाद ईरानी साहित्य का ह्रास शुरू हो जाता है। जो प्रतिभा, गंभीरता और छटा मंगोल आक्रमणों से पहले के ईरानी काव्य और साहित्य में दृष्टिगोचर होती थी, उसके अब दर्शन नहीं होते। काव्य की धारा तो एक तरह से क्षीण ही हो गयी। हाँ, गम्भीर विषयों—जैसे इतिहास, धर्म

और दर्शन आदि—पर ज़रूर कुछ लिखा गया। इस काल में मात्रा की दृष्टि से साहित्य कुछ कम रचा गया हो, यह बात नहीं; पर उसमें वह ओज और माधुर्य नहीं था जो मंगोल आक्रमणों से पहले के साहित्य में था।

ये मंगोल आक्रमण केवल ईरान तक सीमित रहे हों यह बात नहीं, भारत पर भी मंगोलों के आक्रमण हुए और इस देश पर उनका राज्य हो गया। बाबर का पहला आक्रमण भारत पर सन् १५२६ अर्थात् सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ था। इसके बाद लगभग ३०० साल तक इस देश पर मंगोलों (मुगलों) का राज्य रहा। केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, भारत के साहित्याकाश पर भी मंगोलों के साथ ईरान से आनेवाली फ़ारसी भाषा छा गयी। उन दिनों फ़ारसी का साहित्य एक ओर ईरान में और दूसरी ओर भारत में फलने-फूलने लगा।

भारत में फ़ारसी साहित्य

उन्हीं दिनों अबुल फ़ज़ल ने जिसका जन्म सन् १५५१ में आगरा में हुआ था, अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अकबरनामा' लिखा। इसी लेखक ने 'आईने अकबरी' नामक दूसरा ग्रन्थ लिखा। 'अकबरनामा' और 'आईने अकबरी' ये दोनों रचनाएँ उस समय के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। इसके अतिरिक्त अबुल फ़ज़ल ने महाभारत का भी संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद किया।

स्वयं अकबर का इस बात में बड़ा उत्साह था कि भारत के प्राचीन साहित्य का संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद कराया जाये। उसके इसी उत्साह ने अबुल फ़ज़ल तथा अन्य अनेक लेखकों को आगे बढ़ाया। अकबर के बाद इस तरह के उत्साह के दर्शन हमें

का नाम उल्लेखनीय है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, आधुनिक काल के काव्य में नवीन छन्द, नवीन शैली और भावनाओं का प्राधान्य है। अली अकबर दिखुदा ईरान का वह पहला कवि है, जिसने फ़ारसी कविता में इस नवीनता का समावेश किया।

अली अकबर दिखुदा की हाल में मृत्यु हुई है। उसकी कविताएँ देशभक्ति से ओत-प्रोत हैं।

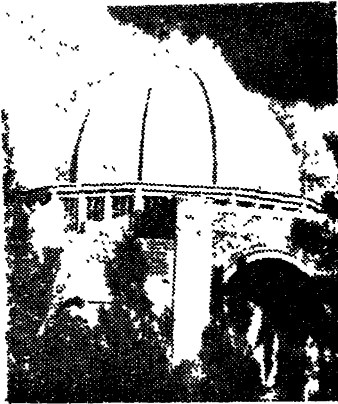
और अब ?

और अब ? यह फ़ारसी साहित्य के सामने एक बहुत बड़ा प्रश्न है जिसका उत्तर देना सरल नहीं।

ईरान की वर्तमान दशा का गहरा अध्ययन करते ही एक निराशा का भाव हृदय में भर जाता है। समय के क्रूर हाथों से ईरानियों को चोट-पर-चोट पहुँची है; और आज भी, जब कि एशिया व अफ्रीका के दूसरे देश एक-एक करके जाग उठे हैं और प्रगति के पथ पर चल पड़े हैं, ईरान अभी अपने सामन्ती युग में से गुज़र रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने उस सामन्ती युग के हाथ मज़बूत कर दिये हैं। ईरान का नागरिक मानो बेबस और निहत्था होकर घायल शेर की तरह हारा और थका-सा समय की बाट जोह रहा है। क्या आश्चर्य कि उसका साहित्य भी आज उसी पराजय का प्रतिबिम्ब हो।

७. ईरान का बहाई आन्दोलन

बहाई यद्यपि ईरान की एक अल्पसंख्यक जाति हैं और उनका उल्लेख इस पुस्तक के चौथे अध्याय में अल्पसंख्यक जातियों के साथ किया जाना चाहिए था, पर उनका एक विशिष्ट स्थान न केवल ईरान के समाज में अपितु संसार के सभी बड़े-बड़े देशों में है। विश्व के सुदूर कोनों में बहाई धर्म का प्रकाश धीरे-धीरे, पर निश्चित क्रम से फैल रहा है। इस धर्म के द्वारा ईरान का मान संसार में बहुत बढ़ा है। इसलिए ईरान के बहाई आन्दोलन का विशेष और अलग उल्लेख इस पुस्तक में आवश्यक था। बहाई आन्दोलन इतना प्रगतिशील है कि उसमें संसार का एक संयुक्त धर्म बनने की पूरी सम्भावनाएँ मौजूद हैं। वह किसी पैगम्बर को आखिरी पैगम्बर नहीं मानता; वेद, कुरान और इंजील की तरह उसका कोई ऐसा धर्म-ग्रन्थ नहीं जिसे वह अन्तिम और निर्भ्रान्त सत्य मानता हो।



तेहरान का बहाई केन्द्र

बहाई एक सम्प्रदाय न होकर एक दृष्टिकोण है जिसका आधार अन्धश्रद्धा न होकर बुद्धि है। इस दृष्टिकोण को संसार का

शाहजहाँ में होते हैं। शाहजहाँ के सबसे बड़े बेटे दारा को संस्कृत साहित्य में बड़ा प्रेम था। उसने स्वयं उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया था।

मुग़लों के हाथों फ़ारसी को ऐसा बल मिला कि हिन्दुस्तान से उनका राज्य समाप्त हो जाने के बावजूद फ़ारसी का इस देश में बहुत समय तक बोलबाला रहा। अंग्रेज़ों ने यद्यपि अंग्रेज़ी भाषा के प्रचार में कोई कसर नहीं उठा रखी, पर फ़ारसी के प्रेम को वे भी कम नहीं कर सके। आगे जाकर इस फ़ारसी-प्रेम को हाली, ग़ालिब, सौदा, मीर, चकबस्त और इकबाल-जैसे कवियों ने प्रगति दी। आज भी, स्वतन्त्र भारत में फ़ारसी लिपि चाहे पीछे छूट गयी है पर बोलचाल और साहित्य दोनों पर फ़ारसी का काफ़ी असर है। हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं के बहुत से शब्द शुद्ध फ़ारसी उच्चारण के हैं, और उनके माध्यम से ईरान और भारत में एक आध्यात्मिक कड़ी जुड़ी हुई है।

मुग़लों के शासन-काल में फ़ारसी का भारत में इतना अधिक प्रचार हुआ कि उसका साथ देने के लिए अनेक शब्दकोष लिखने की आवश्यकता हुई। ये शब्दकोष इतने प्रामाणिक थे और इतनी अधिक संख्या में लिखे गये कि स्वयं ईरान में भी इतने प्रामाणिक और इतनी अधिक संख्या में उस समय तक नहीं लिखे गये थे। ईरान के स्कूलों में भी वे शब्दकोष प्रचलित हो गये। उनमें से कुछेक शब्दकोष निम्नलिखित हैं :

१. फ़रदङ्ग-ए-जहाँगीरी—जलालुद्दीन हसन (सन् १६-०८-९)

२. फ़रदङ्ग-ए-रशीदी—अब्दुर रशीद (सन् १६५४)

६. बहारे आज़म—राय टेकचन्द्र (दिल्ली का एक खत्री)

४. फ़रदङ्ग-ए-निजाम--सय्यद मुहम्मद अली ।

तृतीय काल

सन् १८२८ से, जब कि रूस के साथ समझौता हो जाने के बाद ईरान को निश्चिन्त होकर अपनी भीतरी उन्नति तथा साहित्यिक विकास की ओर ध्यान देने की फ़ुरसत मिली, ईरान के साहित्य का आधुनिक काल माना जाता है । आधुनिक काल की सब से बड़ी विशेषता यह है कि ईरान का साहित्य फिर एक बार क्लिष्टता के चंगुल से निकल सरलता के मार्ग पर चल पड़ा । द्वितीय काल में तो, हिन्दी साहित्य के रीति काल की भाँति, कल्पना की बारीकियाँ, अलंकारों की कलाबाज़ी और अनेक कृत्रिमताएँ ईरान के साहित्य में घर कर गयी थीं । जैसे रीति काल में लिखा तो बहुत कुछ गया था पर अपने पूर्ववर्ती सूर और तुलसी का-सा स्वाभाविक सरल उल्लास हिन्दी साहित्य में सर्वथा नहीं था; ठीक उसी प्रकार ईरान के साहित्य का भंडार भी द्वितीय काल में जिन रचनाओं से भरा गया उनमें स्वाभाविकता व सरलता का सर्वथा अभाव था । आधुनिक काल में फिर एक बार ईरान के साहित्य में निखार आया ।

इस काल की दूसरी विशेषता यह है कि ईरान में छापेखाने खुल गये और इससे प्राचीन कलाकारों की रचनाओं के सुन्दर संस्करण साधारण जनता के लिए बड़े सुलभ हो गये । साहित्य, जो अब तक कुछ संभ्रान्त व्यक्तियों तक सीमित था 'सर्वजन हिताय' हो गया और लेखकों व कवियों ने भी नवीन युग के इस नवीन संदेश को पहचाना । समाचार-पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से इसमें और भी अधिक सहायता मिली ।

आधुनिक काल के ईरानी कवियों में अली अकबर दिखुदा

कोई भी व्यक्ति अपना सकता है, चाहे वह किसी भी देश और सम्प्रदाय का हो। इसका मूलमंत्र है—सब धर्मों के प्रति आदर और सद्भावना। यही कारण है कि संसार के सभी देशों में इस धर्म के अनुयायियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। अभी इस धर्म की उम्र करीब ८० वर्ष ही है पर इसके माननेवाले संसार में २५ लाख के करीब व्यक्ति हैं। अकेले ईरान में इसके अनुयायियों की संख्या १० लाख है।

भारत में ब्रह्मसमाज और इंग्लैंड में क्वेकर सम्प्रदाय भी इसी तरह के उदार दृष्टिकोण को लेकर चले थे। पर वे अनेक कारणों से इतने विश्वव्यापी न हो सके जितना कि ईरान का बहाई आन्दोलन।

उदय

आज से ८० वर्ष पूर्व ईरान के एक नवयुवक ने जिसकी उम्र मुश्किल से २५ वर्ष थी, अचानक एक दिन घोषणा की कि उसे ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है और वह इस संसार में एक निश्चित और महान् उद्देश्य लेकर आया है।

२० अक्तूबर सन् १८१९ के दिन शीराज़ में, जो ईरान के दक्षिण में है, उस नवयुवक का जन्म हुआ था। उसके घराने का सीधा सम्बन्ध हज़रत मुहम्मद से था। उसका बचपन का नाम मिर्ज़ा अली मुहम्मद था। पर २३ मई सन् १८४४ को, जब कि उसने उपरोक्त घोषणा की, उसने अपना नाम 'बाब' रखा। 'बाब' फारसी में 'द्वार' को कहते हैं। उसका विश्वास था कि वह इस संसार में एक 'द्वार' के रूप में अवतरित हुआ है, जिसके भीतर से ईश्वर की ज्योति विश्व में फैलेगी। आज उसके अनुयायी उसके बचपन के नाम से नहीं बल्कि 'बाब' नाम ही

से उसको याद करते हैं ।

बाब ने इस घोषणा के उपरान्त मक्का की यात्रा की और जगह-जगह अपने इस विश्वास को दुहराया । इसका स्वाभाविक परिणाम जो होना था वही हुआ । लोग उसके विरोधी ही नहीं प्राणों के ग्राहक भी बन गये । ९ जुलाई सन् १८५० को जब वह अभी ३१ वर्ष का था, उसे मौत के घाट उतार दिया गया ।

बहाउल्लाह

बहाई सम्पदाय के दूसरे महान् नेता मिर्ज़ा हुसैन अली का जन्म १२ नवम्बर सन् १८१७ को तेहरान में हुआ । इनके पिता मिर्ज़ा अब्बास तेहरान के राजमंत्री थे ।

सन् १८६३ में मिर्ज़ा हुसैन अली ने अपने ईश्वरीय अवतार होने की घोषणा की । उन्होंने भी बाब की तरह अपना नाम बदलकर बहाउल्लाह रख दिया जिसका फ़ारसी में अर्थ होता है 'ईश्वर की ज्योति ।'

बहाउल्लाह किसी स्कूल या कालेज में कभी भरती नहीं हुए । इनकी जितनी योग्यता थी अपने स्वाध्याय का ही परिणाम था । फिर भी इन्हें अनेक भाषाओं का ज्ञान था और न केवल अपने देश, बल्कि विदेशों की स्थिति का भी गहरा परिचय था । इन्होंने अनेक देशों की सरकारों और पोप को भी पत्र लिखे, जिनमें विश्व-शान्ति के लिए अपील थी ।

वास्तव में बहाई सम्प्रदाय को एक स्पष्ट रूप-रेखा इन्होंने ही प्रदान की । इन्होंने बहाई आन्दोलन का एक निश्चित उद्देश्य अपने अनुयायियों के सामने रखा । ये उद्देश्य १२ हैं और सूत्र रूप से निम्नलिखित हैं :

१. मनुष्य-मात्र की एकता ।
२. सभ्यता का स्वतंत्र अनुसन्धान ।
३. समस्त धर्मों की नींव एक है ।
४. धर्म को एकता का अनिवार्य रूप से साधन होना चाहिए ।
५. धर्म का आधार विज्ञान और बुद्धि पर होना चाहिए ।
६. पुरुषों तथा स्त्रियों की समानता ।
७. पक्षपात का सर्वथा त्याग ।
८. विश्वव्यापी शान्ति ।
९. विश्वव्यापी शिक्षा ।
१०. आर्थिक समस्या का नैतिक उपायों से समाधान ।
११. एक विश्वव्यापी भाषा ।
१२. एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ।

बाब की तरह बहाउल्लाह का भी चारों ओर से घोर विरोध हुआ । उन्हें और उनके अनुयायियों को तेहरान के कारागार में बन्दी बना दिया गया । बाद में इन्हें सन् १८६८ में अक्का में आयुपर्यन्त कैद कर दिया गया । अक्का तुर्कों का कालापानी है और कारमल पर्वत के दामन में है ।

अब्दुलबहा

बहाउल्लाह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम अब्दुलबहा था, जिसका फ़ारसी में अर्थ 'ज्योति का सेवक' होता है। बहाउल्लाह के बाद बहाई आन्दोलन के नेता अब्दुलबहा हुए। उन्हें भी अपने बाप के साथ सन् १८६८ में अक्का में कैद कर लिया गया था । वे ४० वर्ष तक अक्का में कैद रहे और सन् १९०८

में तुर्की के एक युवक-आन्दोलन के फलस्वरूप रिहा हुए। अब्दुल-बहा का स्वर्गवास १९२१ में हुआ। उनके बाद उन्हीं के दौहित्र शौकी अफ़ेन्दी बहाई धर्म के संरक्षक बनाये गये।



बहाउल्लाह के पुत्र अब्दुलबहा

इस प्रसंग में एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए। बहाई लोगों की दृष्टि में बाब और बहाउल्लाह तो ईश्वर के अवतार हैं, पर अब्दुलबहा और शौकी अफ़ेन्दी केवल धर्म के संरक्षक। कोई भी बहाई बाब और बहाउल्लाह के नामों का उल्लेख 'हज़रत' के आदर-सूचक विशेषण के बिना नहीं करता और उनका नाम लेते समय उसका मन भीग-सा जाता है। बाब और बहाउल्लाह के चित्रों का प्रकाशन भी वे अपने ग्रन्थों में कभी नहीं करते। वे इन दोनों को सांसारिकता से ऊपर रखते हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक में बाब या बहाउल्लाह का चित्र नहीं दिया जा सका।

सन् १९५५ के उपद्रव

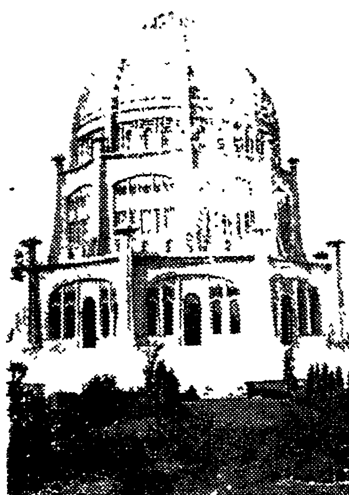
ईरान के समाज में बहाई लोगों की स्थिति एक तरह से बड़ी विचित्र है। एक ओर तो, व्यक्तिगत तौर पर वे बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं; दूसरी ओर, मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं पर आघात पहुँचाने के कारण, उनके ख़िलाफ़ रोष भी काफ़ी है। बहाई धर्म के नेताओं व संरक्षकों के नाम

यद्यपि मुसलमानों के-से हैं पर वे मुसलमान नहीं हैं। इस्लाम से उनके उसूलों में कुछ बुनियादी भेद हैं। सबसे बड़ा भेद तो यही है कि वे मुहम्मद साहब को ईश्वर का अन्तिम अवतार नहीं मानते। उनका विश्वास है कि हर युग में ईश्वर अवतार लिया करता है। इसी प्रकार कुरान भी उनकी दृष्टि में ईश्वर का अन्तिम और निर्भ्रान्त धर्मग्रन्थ नहीं है। इन भेदों का परिणाम यह है कि कट्टर पंथी मुसलमान उनके खिलाफ़ समाज में ज़हर फैलाते रहते हैं। बहाई लोग अपनी ईमानदारी और दूसरे गुणों के कारण ऊँचे सरकारी पदों पर प्रतिष्ठित हैं। वे इतने विश्वसनीय समझे जाते हैं कि शाह ईरान के, जो स्वयं मुसलमान हैं, निजी डाक्टर एक बहाई हैं। इतना ही नहीं, राजमहल के भरोसे के अनेक कर्मचारी भी बहाई हैं। यह प्रतिष्ठा कट्टरपन्थी मुसलमानों की रोषाग्नि में घी का काम करती है। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९५५ में ईरान में जगह-जगह बहाई लोगों के खिलाफ़ दंगे शुरू हो गये। हज़ारों बहाई मौत के घाट उतार दिये गये। उनके पूजास्थानों को तोड़-फोड़ दिया गया। तेहरान में बहाई लोगों के केन्द्रीय कार्यालय का ऊपरी गुम्बद भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और उस पर उपद्रवियों ने अधिकार कर लिया। अब यह स्थान यद्यपि बहाई लोगों को वापिस मिल गया है, पर जन-साधारण के रोष के डर से उसका ऊपरी गुम्बद फिर से नहीं बनाया जा सका।

अमरीका को बहाइयों की भेंट

अमरीका द्वारा अनेक देशों की सहायता की बात सब जानते हैं, पर ईरान के बहाइयों ने अपने उत्साह और प्रयत्नों से विल्मीट (इलिनॉय राज्य, अमरीका) में जिस शानदार इमारत को भेंट

किया है उसकी बात बहुत कम लोगों को मालूम है। उस इमारत पर क़रीब एक करोड़ रुपया खर्च आया है। सन् १९१० में उसके लिए भूमि खरीदी गयी थी और अनेक विघ्न-बधाओं के कारण उसकी तामीर बीच-बीच में अनेक बार रोक देनी पड़ी। सन् १९४४ में वह इमारत पूरी बनकर तैयार हो गयी।



विल्मीट (अमरीका) का बहाई मन्दिर

विल्मीट का बहाई मन्दिर देखने में ताजमहल के समान भव्य और सुन्दर है। उसकी भवन-निर्माण-कला में अनेक कलाओं का सम्मिश्रण है। उसकी निर्माण-कला में कुछ ऐसी रहस्यमयी विशेषता है कि दर्शक के मन में अनायास अनेक जातियों व धर्मों की बुनियादी एकता का भाव उमड़ आता है।

बहाइयों की योजना संसार के प्रत्येक देश में इसी प्रकार के धर्म-मन्दिरों की स्थापना करना है। उनका यह अडिग विश्वास है कि संसार के प्रत्येक धर्म और जाति को खपा देने की बहाइयों में शक्ति है, क्योंकि एक महान् उदार भावना उनका ठोस आधार है। वे सारे संसार में एक भाषा, एक धर्म और एक सरकार का स्वप्न लेकर चल रहे हैं।

८. ईरान के दर्शनीय स्थान

ईरान के सम्बन्ध में अनेक लोगों की ऐसी धारणा है कि सिवाय रेगिस्तानों और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियों के वहाँ कुछ भी दर्शनीय नहीं है। पर बात ऐसी नहीं है। वहाँ एक ही साथ प्राकृतिक सौन्दर्य, ऐतिहासिक आश्चर्य की इमारतें, पुराने ज़माने का कला-कौशल और आधुनिकतम भोग-विलास के दर्शन किये जा सकते हैं। प्राकृतिक और मानवी सौन्दर्य दोनों ईरान में अपनी चरम सीमा पर हैं। इस अध्ययन में हम ईरान के कतिपय दर्शनीय स्थानों का परिचय देंगे।

तेहरान

ईरान की राजधानी तेरहान में प्राचीनता और नवीनता का अद्भुत मिश्रण है। इसकी आबादी १५ लाख और क्षेत्रफल २१० वर्गमील है। यह ४ हज़ार फुट की ऊँचाई पर बसा है। अपने आधुनिकतम होटलों, शानदार इमारतों, बग़ीचों व पार्कों तथा सिनेमा-नाचघरों की बदौलत इसे एशिया की सुन्दरतम और आधुनिकतम राजधानियों में रखा जा सकता है। शाम होते ही वहाँ के लाल अज़ार बाज़ार में आप सैर को निकल जाइए। बत्तियों की चकाचौंध, जिसके एक ओर १८ हज़ार फुट की सब से ऊँची देमावन्द की चोटियाँ हैं और दूसरी ओर ईरान के संसार-प्रसिद्ध गालीचों की सजी-धजी दूकानें, आपके मन में एक विचित्र

रोमांस की सृष्टि कर देंगी और आप खोये-से रह जायेंगे।



नर्सिंग होम तेहरान की छात्राएँ

तेहरान के दर्शनीय स्थानों में गुलिस्तान पैलेस प्रमुख स्थान है। इसे गुलाब बाग भी कहते हैं। यह सौ वर्ष पुरानी शानदार

इमारत है, जिसके चारों ओर सुन्दर बाग़ीचा है । ईरान का गुलाब संसार में मशहूर है । अतः क्या आश्चर्य कि गुलाब बाग में जाते ही गहरे लाल रंग के महकते हुए गुलाब दर्शक का मन मोह लें ।

पैलेस में प्रवेश करते ही संगमरमर की उज्ज्वल-धवल सीढ़ियाँ हैं जिन पर बढ़िया ईरानी कालीन बिछे हैं । मुख्य हॉल में भी, जहाँ राज-सिंहासन रखा है, फ़र्श पर बढ़िया कालीन बिछे हैं । ये क़ालीन सैकड़ों साल प्राचीन हैं । दीवारों पर अनेक प्रकार की चित्रकारी खचित है । पुराने ज़माने के आभूषण और सोने-चाँदी का काम, जिसके लिए ईरान की ख्याति है, इसकी दीवारों पर प्रदर्शित किये गये हैं । अनेक ऐतिहासिक उपहार भी, जो प्राचीन काल में विविध विदेशी राजदूतों द्वारा ईरान के शाही दरबारों में भेंट किये गये थे, इन दीवारों पर सजाकर रखे गये हैं ।

उपर्युक्त हॉल के आखिरी सिरे पर संसार-प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन रखा है, जिस पर अमूल्य हीरे और नाना प्रकार के रत्न जड़े हैं । भारतीय इतिहास के किसी भी विद्यार्थी के मन में यह मयूर-सिंहासन यद्यपि दो देशों के एक दुःखद अध्याय की स्मृति ताजा करनेवाला है, पर सच यह है कि गुलिस्तान पैलेस की यही जान है । भारत से ईरान पहुँचने के बाद से आज तक हमेशा इसी मयूर-सिंहासन पर मनोनीत राजा को बिठाकर राज्यारोहण की रस्म अदा की जाती रही है ।

गुलिस्तान पैलेस सप्ताह में केवल दो दिन रविवार और गुरुवार को ही खुलता है ।

तेहरान का दूसरा दर्शनीय स्थान उसका पुरातत्त्व संग्रहा-

लय है। सिवाय शुक्रवार के सप्ताह के बाकी सब दिनों यह खुला रहता है। तेहरान के बड़े डाकखाने के यह बिल्कुल समीप है।

ईरान के प्राचीन इतिहास के अनेक स्मारक और अवशेष इसमें सजाकर रखे गये हैं। इनमें से कुछेक अवशेष तो ४ हज़ार ईसा पूर्व के हैं। इसके अतिरिक्त उस अजायबघर में अनेक इस्लामी कला-कौशल व संस्कृति के नमूने भी देखने योग्य हैं।

तेहरान के राष्ट्रीय अजायबघर में ईरान की प्राचीन वेश-भूषाओं और रहन-सहन का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इसमें अनेक मानवी मूर्तियों को तरह-तरह की वेश-भूषाओं में सजाकर इस ढंग से रखा गया है कि ईरान के पुरातन युग से लेकर अब तक का आम लोगों का दैनिक जीवन का पहरावा भली-भाँति प्रदर्शित हो जाये।

उपरोक्त तीन दर्शनीय स्थानों के अतिरिक्त एक चीज तेहरान में और ऐसी है जो दर्शक के मन को सबसे अधिक कौतूहल से भर देती है। वह है ईरान के शाही 'हीरे-जवाहरात का भंडार।' इसे देखने के लिए तेहरान के राष्ट्रीय बैंक से, जिसके कब्जे में यह है, खास इजाज़त लेनी पड़ती है। यहाँ जाकर तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे दर्शक अली बाबा की 'खुल सिम-सिम गुफ़ा' में पहुँच गया हो। जवाहरात की ढेरियाँ एक ओर इस तरह लगी हैं जैसे खेतों में फसल उतरने के बाद गेहूँ रखा हो। दो शाही मुकुट रखे हैं, जिन पर लगे हीरों की कीमत अब तक कूती ही नहीं जा सकी। ऐसी तलवारें और म्यानें रखी हैं जो कीमती पत्थरों से लदी हुई हैं।

इस भंडार में विश्व प्रसिद्ध हीरा 'दरया-ए-नूर' (प्रकाश का

इमारत है, जिसके चारों ओर सुन्दर बाग़ीचा है। ईरान का गुलाब संसार में मशहूर है। अतः क्या आश्चर्य कि गुलाब बाग में जाते ही गहरे लाल रंग के महकते हुए गुलाब दर्शक का मन मोह लें।

पैलेस में प्रवेश करते ही संगमरमर की उज्ज्वल-धवल सीढ़ियाँ हैं जिन पर बढ़िया ईरानी कालीन बिछे हैं। मुख्य हॉल में भी, जहाँ राज-सिंहासन रखा है, फ़र्श पर बढ़िया कालीन बिछे हैं। ये क़ालीन सैकड़ों साल प्राचीन हैं। दीवारों पर अनेक प्रकार की चित्रकारी खचित है। पुराने ज़माने के आभूषण और सोने-चाँदी का काम, जिसके लिए ईरान की ख्याति है, इसकी दीवारों पर प्रदर्शित किये गये हैं। अनेक ऐतिहासिक उपहार भी, जो प्राचीन काल में विविध विदेशी राजदूतों द्वारा ईरान के शाही दरबारों में भेंट किये गये थे, इन दीवारों पर सजाकर रखे गये हैं।

उपर्युक्त हॉल के आखिरी सिरे पर संसार-प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन रखा है, जिस पर अमूल्य हीरे और नाना प्रकार के रत्न जड़े हैं। भारतीय इतिहास के किसी भी विद्यार्थी के मन में यह मयूर-सिंहासन यद्यपि दो देशों के एक दुःखद अध्याय की स्मृति ताजा करनेवाला है, पर सच यह है कि गुलिस्तान पैलेस की यही जान है। भारत से ईरान पहुँचने के बाद से आज तक हमेशा इसी मयूर-सिंहासन पर मनोनीत राजा को बिठाकर राज्यारोहण की रस्म अदा की जाती रही है।

गुलिस्तान पैलेस सप्ताह में केवल दो दिन रविवार और गुरुवार को ही खुलता है।

तेहरान का दूसरा दर्शनीय स्थान उसका पुरातत्त्व संग्रहा-

लय है। सिवाय शुक्रवार के सप्ताह के बाकी सब दिनों यह खुला रहता है। तेहरान के बड़े डाकखाने के यह बिल्कुल समीप है।

ईरान के प्राचीन इतिहास के अनेक स्मारक और अवशेष इसमें सजाकर रखे गये हैं। इनमें से कुछेक अवशेष तो ४ हज़ार ईसा पूर्व के हैं। इसके अतिरिक्त उस अजायबघर में अनेक इस्लामी कला-कौशल व संस्कृति के नमूने भी देखने योग्य हैं।

तेहरान के राष्ट्रीय अजायबघर में ईरान की प्राचीन वेश-भूषाओं और रहन-सहन का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इसमें अनेक मानवी मूर्तियों को तरह-तरह की वेश-भूषाओं में सजाकर इस ढंग से रखा गया है कि ईरान के पुरातन युग से लेकर अब तक का आम लोगों का दैनिक जीवन का पहरावा भली-भाँति प्रदर्शित हो जाये।

उपरोक्त तीन दर्शनीय स्थानों के अतिरिक्त एक चीज तेहरान में और ऐसी है जो दर्शक के मन को सबसे अधिक कौतूहल से भर देती है। वह है ईरान के शाही 'हीरे-जवाहरात का भंडार।' इसे देखने के लिए तेहरान के राष्ट्रीय बैंक से, जिसके कब्जे में यह है, खास इजाज़त लेनी पड़ती है। यहाँ जाकर तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे दर्शक अली बाबा की 'खुल सिम-सिम गुफ़ा' में पहुँच गया हो। जवाहरात की ढेरियाँ एक ओर इस तरह लगी हैं जैसे खेतों में फसल उतरने के बाद गेहूँ रखा हो। दो शाही मुकुट रखे हैं, जिन पर लगे हीरों की कीमत अब तक कूती ही नहीं जा सकी। ऐसी तलवारें और म्यानें रखी हैं जो कीमती पत्थरों से लदी हुई हैं।

इस भंडार में विश्व प्रसिद्ध हीरा 'दरया-ए-नूर' (प्रकाश का

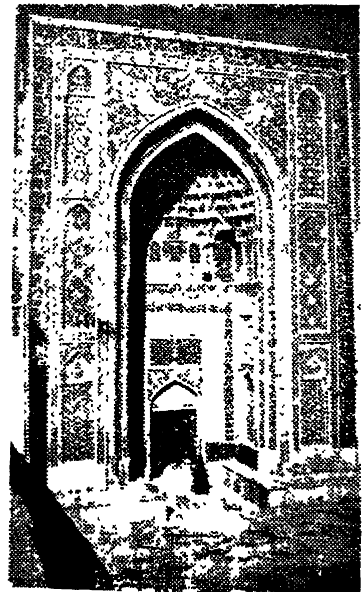
समुद्र) विशेष दर्शनीय है । यह हीरा आकार में संसार के सब हीरों से बड़ा है । यहाँ शुद्ध सोने का बना एक ग्लोब है जिसमें भिन्न-भिन्न देश विविध कीमती पत्थरों द्वारा दर्शाये गये हैं। सच्चे मोतियों की लड़ियों की तो, जिनमें कबूतर के अंडों जितने बड़े-बड़े मोती हैं, कोई गिनती ही नहीं ।

इस भंडार में सूंघनी की एक ऐसी डिबिया है जिसकी कीमत का अन्दाजा रुपये-पैसे में लगाना संभव नहीं माना जाता । इस डिबिया के ऊपर का ढक्कन चमचमाते पन्ना का है जो तीन इंच लम्बा और दो इंच चौड़ा है ।

ईरान के दर्शनीय स्थानों में प्राचीन मसजिदों का अपना एक विशेष स्थान है । तेहरान में भी सिपहसालार मसजिद और



तबरेज़ की मसजिद कबूद

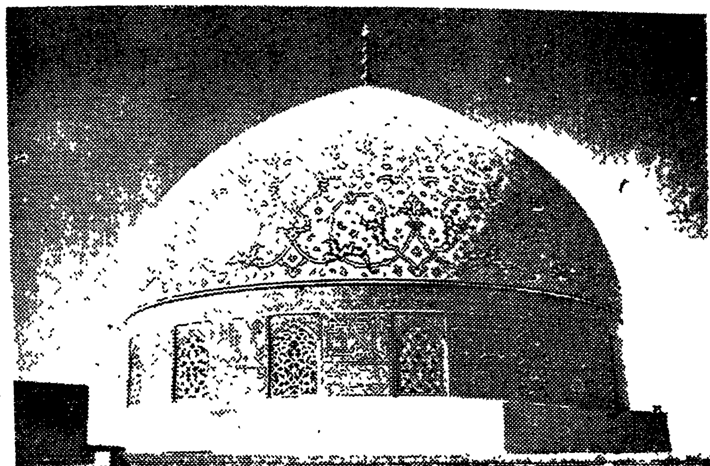


किरमान की जामा मसजिद

शाही मसजिद देखने योग्य हैं। जिन्हें इस प्रकार की मसजिदों में खास दिलचस्पी है उन्हें तबरेज़ में जाकर कबूद की मसजिद और किरमान में जाकर जामा मसजिद भी अवश्य देखनी चाहिए।

इस्फ़हान

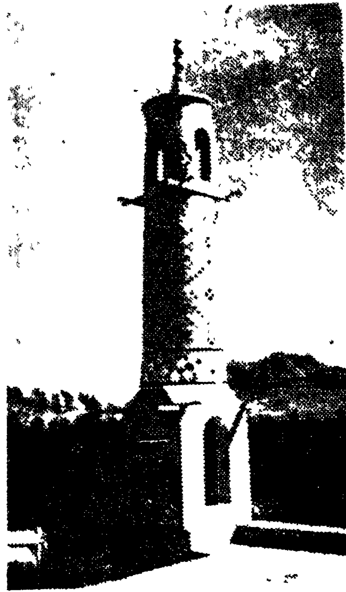
इस्फ़हान कभी ईरान की राजधानी थी। तेहरान से उतरकर यह ईरान का दूसरा बड़ा नगर है। सत्रहवीं शताब्दी में जब कि यहाँ शाह अब्बास का राज्य था, इसकी शान



इस्फ़हान में शेख लुत्फ़ उल्लाह की मसजिद

निराली थी। यहाँ के प्राचीन राजमहल और सुन्दर मसजिदें ईरान में अपना सानी नहीं रखतीं। शाह अब्बास के ज़माने की शेख़ लुत्फ़ उल्लाह की मसजिद खास देखने लायक है। इस मसजिद के गुम्बद की सुन्दर पच्चीकारी को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं।

इस्फ़हान का 'हिलनेवाला बुर्ज' भी अपनी विचित्रता के



इस्फ़हान का हिलनेवाला बुर्ज़

कारण अत्यन्त दर्शनीय है। इसके निर्माण में कुछ ऐसा रहस्य है कि बीच-बीच में हिलने के बावजूद इसके गिरने का कभी किसी को ख़तरा नहीं हुआ। इसकी नींव बड़ी मज़बूत है।

शीराज़

ईरान का दक्षिणी नगर शीराज़ तो उन लोगों का मक्का है जो पूर्वी देशों के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करना चाहते हैं। यहाँ पर्सि-पोलस (ईरान की प्राचीनतम राजधानी) के खंडहरों को देखते ही आज से ढाई हज़ार वर्ष के संसार के सर्व-प्रथम साम्राज्य की याद ताज़ा हो आती है।

ईरान के दो अमर कवियों—शेख़सादी और हाफ़िज़—के मकबरे यहीं पर हैं। साहित्य और काव्य के प्रेमियों के लिए भी शीराज़ एक तीर्थस्थान से कम नहीं। वे लोग शेख़सादी की आरामगाह और हाफ़िज़ की आरामगाह में मस्तक नँवाने जरूर जाते हैं।

अबादान

अबादान को ईरान के आर्थिक ढाँचे की रीढ़ कहें तो अत्युक्ति न होगी। यह ईरान का बम्बई है। पेट्रोल, जो ईरान की राष्ट्रीय आय का एक तिहाई भाग है, यहीं पर सब तेल-

कूपों से पाइपों द्वारा पहुँचाया जाता है। अबादान का तेल-शोधक कारखाना संसार का सबसे बड़ा तेल-शोधक कारखाना है। यद्यपि दर्शक का सबसे पहला स्वागत यहाँ की पेट्रोल की बू करती है, फिर भी यहाँ की साफ़ और स्वच्छ सड़कें, बढ़िया-से-बढ़िया होटल, नाइट क्लबें, सिनेमा और नाचघर अबादान को एक आधुनिकतम नगरी का दर्जा प्रदान करते हैं।

जिन्हें ईरान का प्राकृतिक सौन्दर्य देखना अभीष्ट हो उनके लिए तो ईरान स्वर्ग से कम नहीं। उन्हें कैस्पियन सागर के तटवर्ती प्रदेशों में ज़ैगरोज़ की पहाड़ियों तथा तेहरान-अबादान के मोटर-मार्ग पर प्रकृति अपने पूरे निखार में दर्शन देगी।

ईरान भारत का पड़ौसी देश है; पड़ौसी देश ही नहीं, उसके इस देश के साथ अत्यन्त प्राचीन काल से आर्थिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। अतः प्रत्येक भारतीय के लिए ईरान एक प्रबल आकर्षण का केन्द्र होना चाहिए।